श्री राम लाल प्रभु जी
परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का
चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

सातवां खण्ड (विचार काण्ड)

लेखक :-
चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक :-
योग साधन आश्रम, 3 - माडल टाऊन,
होश्यारपुर (पंजाब)

ॐ

श्री राम लाल प्रभु जी

परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का

चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

सातवां खण्ड (विचार काण्ड)

लेखक :-

चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 -माडल टाऊन,

होश्यारपुर (पंजाब)

प्रथमवार 1000

योगेश्वर राम लालाब्द 111

विक्रम संबत 2056

ईस्वी सन 1999

भेंट :- रु. 100/-

योग वन्दना

योग – विद्यां नमाम्यहम्

सौंदर्यलहरीरूपां, तापत्रयविनाशनीम् ।
तेजस्विनीं तपोरूपां, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।१।।
संस्थापकां समत्वं तां, शक्तिसर्जनकारिणीम् ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।२।।
अर्धनारीश्वरस्येमां, चैतन्यसार संभवाम् ।
पूर्णरूपकुण्डलिनीं, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।३।।

●●●●

※ योग तुझे नमस्कार ※

सुन्दर करे जो देह को, करे दुखों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ।।१।।
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तवृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ।।२।।
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार। ।
जागृत कण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ।।३।।
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के ''सेवक'', का तुझे नमस्कार ।।४।।

चमन लाल कपूर ''सेवक''

श्री योगेश्वर प्रभु राम – मुलख के चरणों में समर्पित

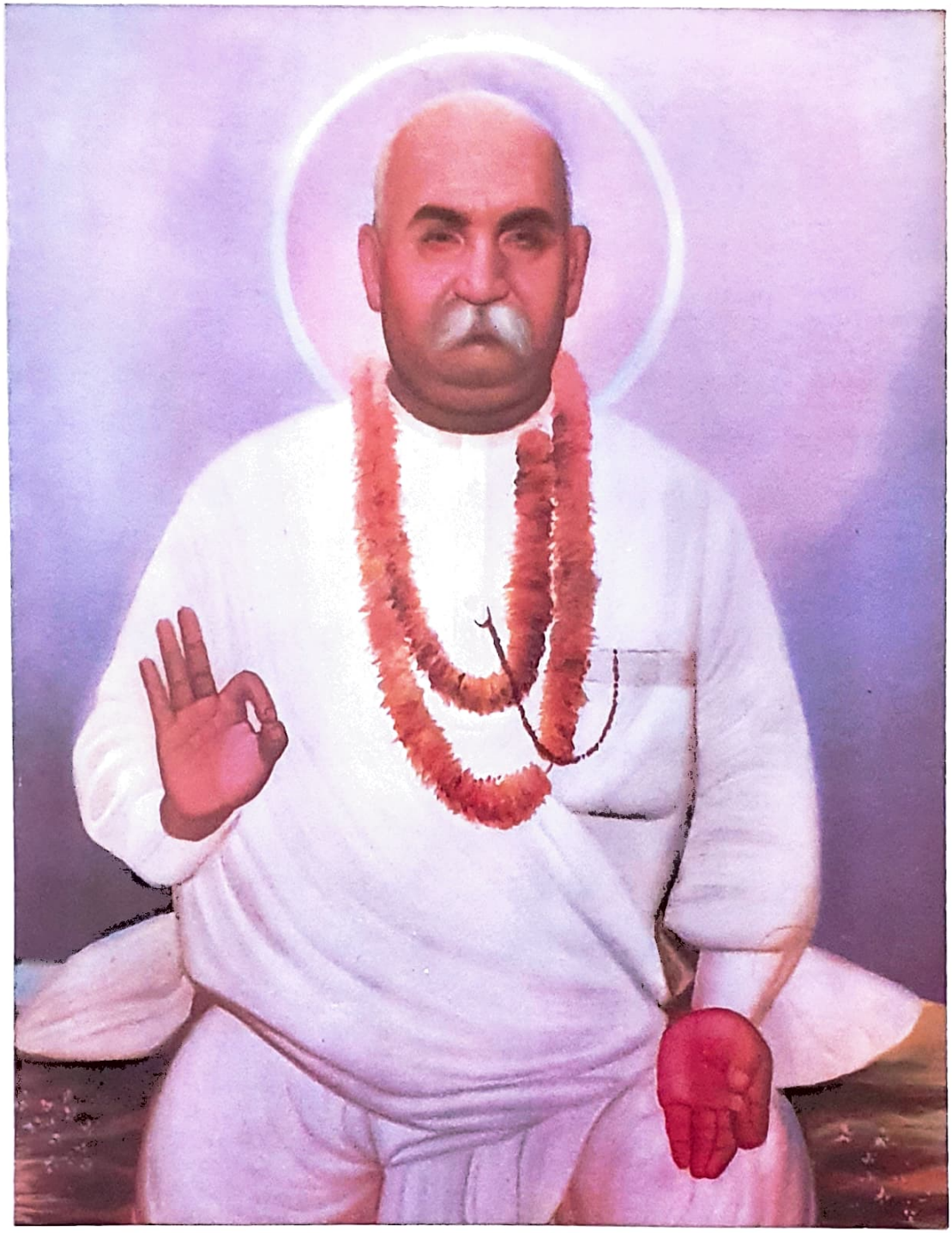

अर्पित है गुरु चरण में, 'राज योग' का काण्ड ।
मुलखराज के शब्द ये, योगी जो प्रकाण्ड ।।
'चमन' मुलख के चरण में, रहे सदा आसीन ।
'सेवक' बन सेवा करे, दास निमाना दीन ।।

भूमिका

'श्री योग महादिव्य रामायण' का 'विचार काण्ड' प्रभु भक्तों के कर कमलों में पहुंच रहा है। इस में योगेश्वर श्री स्वामी मुलख राज जी महाराज के मुखारविंद से निकसित राजयोग के दिव्य उपदेशों का सार है।

पातंजल योग दर्शन के चारों पादों – समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, और कैवल्यपाद – की सरल और सुमधुर व्याख्या सरल रूप में यह प्रस्तुत है। राज योग के गूढ़ और दुरूह विषय को सर्वसाधारण तक पहुंचाने का प्रयास है, ताकि योग के प्रति जनता की आस्था जागृत हो और योग साधना को श्रद्धा पूर्वक करते हुए कैवल्य को अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करें।

प्रस्तुत 'विचार काण्ड' श्री स्वामी जी महाराज और एक साधु के तैंतीस दिनों के संवाद में संपूर्ण हुआ है। इस में प्रति दिन प्रातः और सांयकाल के सत्संग की योजना है। प्रति दिन किस–2 विषय पर श्री स्वामी जी महाराज ने साधु को उपदेश दिया है यह सब जिज्ञासु विषय सूचि से देखकर स्वयं जान सकते हैं।

योग दर्शन के चारों पादों और उनमें आये सूत्रों के आधार पर ही इस ग्रंथ का विषय चलाया है। इस से जिन आदरणीय विद्वानों ने योग दर्शन का अनुशीलन किया हुआ होगा उन के लिए यह ग्रंथ विशेष रुचिकर हो सकता है। ऐसा विचार है।

योग दर्शन पर कई भाष्य और टीकाएं प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में यहां उन से कुछ भिन्नता भी हो सकती है। परन्तु ऐसा होना स्वाभाविक है। माननीय विद्वान पाठक मेरी इस धृष्टता को क्षम्य जानने की कृपा करेंगे।

होश्यारपुर
20.05.1999

श्री प्रभु चरण रज
चमन लाल कपूर 'सेवक'

श्री योग महादिव्य रामायण (विचार काण्ड)

विषय सूची

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
1.	पहला	4004 – 4010	योग का लक्ष्य, चित्त की वृत्तियों का निरोध ।	2
2.	दूसरा	4011 – 4020	वृत्तियों के पांच भेद । क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियां । प्रत्येक वृत्ति का लक्षण ।	6
3.	तीसरा	4021 – 4030	क्लिष्ट और अक्लिष्ट की व्याख्या वृत्ति निरोध के साधन – अभ्यास और वैराग्य	11
4.	चौथा	4031 – 4039	दृढ़ अभ्यास के साधन – दीर्घ काल, नैरन्तर्य और सत्कारसेविता । पर और अपर वैराग्य की व्याख्या ।	17
5.	पांचवां	4040 – 4049	संप्रज्ञात समाधि का स्वरूप – वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता की व्याख्या ।	22
6.	छटा	4050 – 4059	वितर्क – विचार, आनन्द और अस्मिता की व्याख्या चल रही ।	26
7.	सातवां	4060 – 4069	असम्प्रज्ञात समाधि के हेतु श्रद्धा, वीर्य, स्मृति प्रज्ञा । तीव्र संवेग और मृदु तथा मध्य संवेग ।	32
8.	आठवां	4070 – 4079	ईश्वर का लक्षण और उस का वाचक शब्द प्रणव । ईश्वर के नाम रूप की साधना का फल । प्रत्यक्ष चेतना का बोध और अन्तरायों से मुक्ति । अन्तराय – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य अविरति, भ्रांति दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व अनवस्थितत्व की व्याख्या ।	37

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
9.	नवमां	4080 – 4090	योग की भूमियों का ज्ञान । चित्त विक्षेप के सहचर दुख आदि । एकत्व ध्यान का फल । मन की निर्मलता के उपाय मैत्री आदि की भावना ।	43
10.	दसवां	4091 – 4100	मानसिक एकाग्रता के अन्य उपाय – प्राण – साधना, विषयवती प्रवृत्ति, प्रकाश वाली प्रवृत्ति, विषयों से विरक्ति ।	50
11.	ग्यारहवां	4101 – 4110	मानसिक एकाग्रता के उपाय – स्वप्न व निद्रा के ज्ञान द्वारा । अथवा जिस का जैसा इष्ट हो उसके द्वारा । चित्त का सामर्थ्य – प्रमाण और परम महत्त्व पर्यन्त पर वशीकार 'समापत्ति अर्थात तद्रूपयोग का लक्षण । सवितर्क और निवितर्क समापत्ति का लक्षण ।	55
12.	बारहवां	4111 – 4120	सविचार और निर्विचार समापत्ति का लक्षण सबीज समाधि की परिभाषा, निर्विचार समाधि का फल – आत्मा की निर्मलता ।	61
13.	तेरहवां	4121 – 4130	ऋतंभरा प्रज्ञा और उस का विषय तथा परिणाम । निर्बीज समाधि का लक्षण । क्रिया योग की परिभाषा – तप – स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान और उसका फल ।	65
14.	चौदहवां	4131 – 4140	अविद्या आदि पांच क्लेशों की व्याख्या । क्लेशों से उत्पन्न होने वाली वासनाओं का फल – जन्म मरण में दुख और सुख की प्राप्ति । विवेकी को सुख में दुख की प्रतीति ।	71

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
15.	पंदरहवां	4141 – 4150	'हेय' शब्द की परिभाषा । 'हेय' का कारण । 'दृश्य' की व्याख्या । 'द्रष्टा' का लक्षण । 'दृश्य' की अनश्वरता । द्रष्टा और दृश्य के संयोग का परिणाम ।	77
16.	सोलहवां	4151 – 4160	द्रष्टा और दृश्य के संयोग का कारण – अविद्या अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव और उस का परिणाम – विवेक और कैवल्य । कैवल्य प्राप्ति तक प्रज्ञा की सात भूमियां । योग के आठ अंग और उन का फल – अशुद्धि का क्षय और विवेक की प्राप्ति । आठ अंग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । पांच यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह । इन पांच यमों की सार्वभौमकता का वर्णन । ये महव्रत हैं । पांच नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ।	83
17.	सत्रहवां	4161 – 4170	यम और नियमों के पालन करने में बाधक वितर्क । उस दशा में प्रतिपक्ष की भावना । वितर्क की व्याख्या । अहिंसा आदि में प्रतिष्ठा का फल ।	89
18.	अठारहवां	4171 – 4180	अहिंसा आदि में प्रतिष्ठा का फल ।	95
19.	उन्नीसवां	4181 – 4191	आसन का लक्षण और उस की साधना की रीति । और आसन की सिद्धि का फल । प्राणायाम का लक्षण और उस के चार प्रकार । प्राणसिद्धि का फल ।	101

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
20.	बीसवां	4192 – 4201	प्रत्याहार का लक्षण और उस का फल । धारणा, ध्यान और समाधि का लक्षण । तीनों का एक नाम 'संयम' । संयम में सिद्धि का परिणाम, 'संयम' के सिद्ध होने पर उस का योग की भूमियों में प्रयोग करना । अंतरंग योग = धारणा, ध्यान, समाधि । 'निर्बीज' की दृष्टि से धारणा, ध्यान और समाधि भी बहिरंग माने गये हैं । चित्त के तीन परिणाम – निरोध, समाधि, एकाग्रता तीनों परिणामों में संयम द्वारा भूत और भविष्य का ज्ञान ।	107
21.	इक्कीसवां	4202 – 4211	सिद्धियों का उल्लेख । प्राणियों के शब्दों का ज्ञान, पूर्वजन्म का ज्ञान, परचित्त का ज्ञान ।	114
22.	बाइसवां	4212 – 4221	सिद्धियों का उल्लेख – अन्तर्धान सिद्धि, भविष्य का ज्ञान ।	119
23.	त्रयीसवां	4222 – 4231	सिद्धियों का उल्लेख – मैत्री आदि में संयम से मैत्री आदि का प्रबल बल, हस्ती आदि में संयम करने से हस्ती आदि का बल प्राप्त; दूर की वस्तुओं का ज्ञान ।	124
24.	चौबीसवां	4232 – 4241	सिद्धियों का उल्लेख – ताराव्यूह का ज्ञान, तारों की गति का ज्ञान, कायव्यूह का ज्ञान, भूख – प्यास से निवृत्ति ।	129

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
25.	पचीसवां	4242 – 4251	सिद्धियों का उल्लेख – कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता, सिद्धों के दर्शन, सर्व प्रकार का ज्ञान,चित्त का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान; प्रातिभ (अर्न्तदृष्टि), श्रावण (दिव्य ध्वनि श्रवण), वेदना (दिव्य स्पर्श), आदर्श (दिव्य दर्शन) आस्वाद (दिव्य स्वाद) वार्ता (दिव्य गन्ध) – इन सबकी उपलब्धि ;	134
26.	छबीसवां	4252 – 4261	सिद्धियों का उल्लेख – प्रातिभ आदि सिद्धियों की व्याख्या । परशरीर प्रवेश सिद्धि ।	140
27.	सताइसवां	4262 – 4271	जल,कंटक,कीचड़ आदि से असंग रहकर ऊर्ध्व गति । देह में देदीप्यमान तेज की सिद्धि, दिव्य श्रोत्र की सिद्धि, आकाश गमन की सिद्धि ।	145
28.	अठाइसवां	4272 – 4281	पूर्व लिखित सिद्धियों का पुनः उल्लेख ।	150
29.	उनतीसवां	4282 – 4291	महाविदेह सिद्धि का उल्लेख । पंजभूतों पर विजय सिद्धि जिस से अणिमादि सिद्धियों का प्रादुर्भाव । रूप – लावण्य – बल – वज्र संहनन रूपी काय संपत् की प्राप्ति । इन्द्रियों पर विजय ।	155
30.	तीसवां	4292 – 4301	इन्द्रियजय बनने के लिए 'संयम' साधना की व्याख्या । इन्द्रियजय से मनोजवित्व आदि की प्राप्ति । सर्वज्ञता की प्राप्ति । सर्वज्ञ आदि सिद्धियों से वैराग्य होने पर कैवल्य की प्राप्ति । सिद्धियों द्वारा आकृष्ट होने से पुनः अनिष्ट की प्राप्ति हो सकती है – अतः सावधान किया गया है । विवेकज ज्ञान की प्राप्ति का उपाय ।	161

क्रम संख्या	दिन संख्या	दोहा	विषय	पृष्ठ
31.	इकतीसवां	4302 – 4311	विवेकज ज्ञान की प्राप्ति और उस का फल । कैवल्य का लक्षण । जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि से सिद्धियों की प्राप्ति संभव, 'प्रकृति' से 'जाति' का परिवर्तन, निमितों से नहीं । चित्त का निर्माण आत्म दर्शन से, केवल समाधि से ही चित्त वासना मुक्त होता है । अन्य उपायों से नहीं योगी का कर्म अशुक्ल – अकृष्ण अन्य का पाप, पुण्य और पाप–पुण्य मिश्रित । इन तीन प्रकार के कर्मों से वासनाओं की अभिव्यक्ति, स्मृति और संस्कार की एकरूपता ।	166
32.	बतीसवां	4312 – 4321	वासनाओं का अनादित्व । वासनाओं के अभाव की रीति ।	173
33.	तैंतीसवां	4322 – 4335	एक ही जन्म में कर्म कैसे क्षय हों ? योग की विशिष्ट सिद्धि–निर्माण चित्त । कैवल्य प्राप्ति की अन्य रीति – ज्ञान समाधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति – धर्ममेघ समाधि । 'धर्ममेघ' योगी विश्व की विशेष विभूति ।	178

ॐ

श्री दिव्य रामायण सहगान

दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ।।
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ।।
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ।।
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ।।
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुखदायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
'सेवक' शीश झुकावे ।।

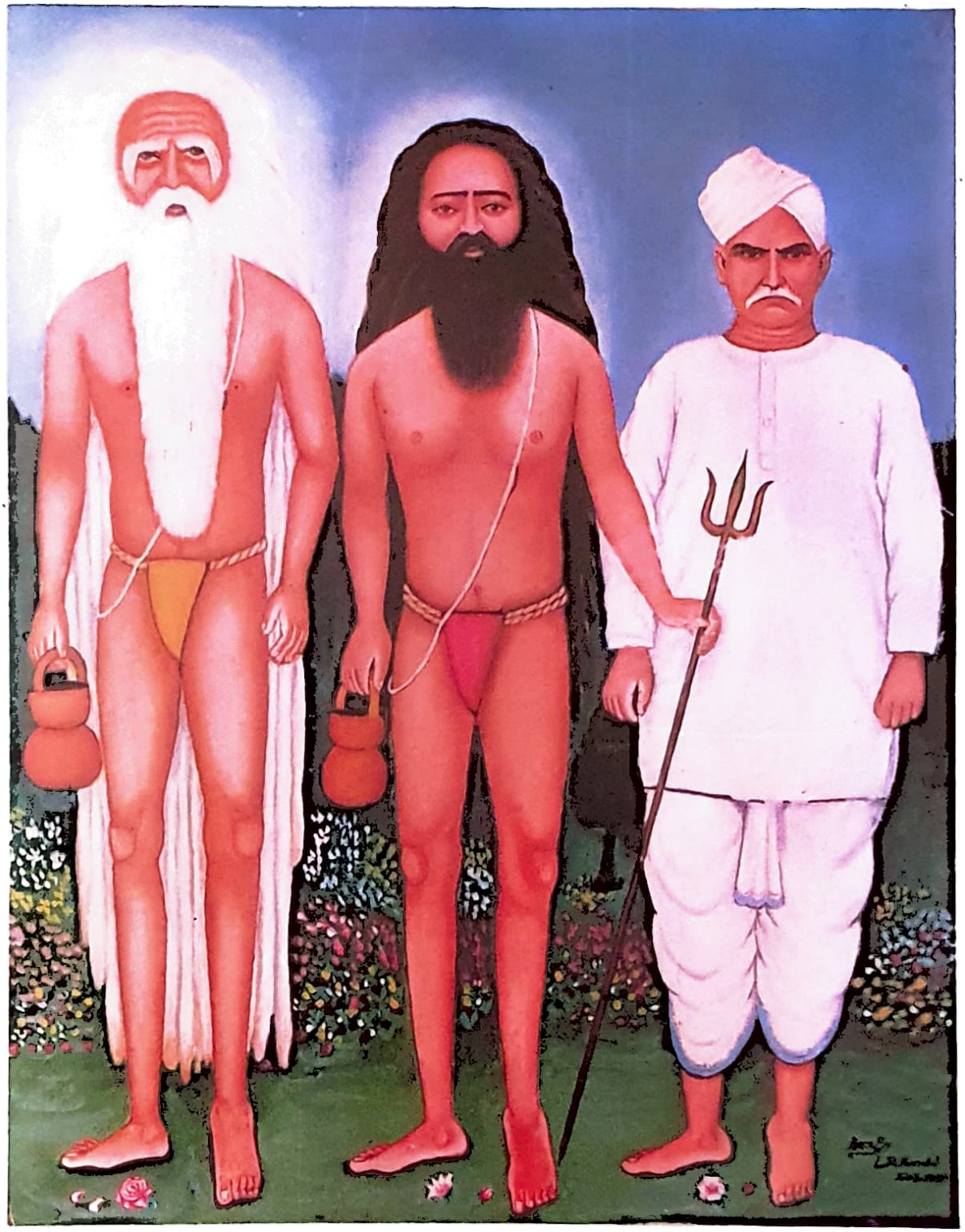

महाप्रभु, प्रभु राम जी,
और मुलख जी राज ।
तीनों रूप ये दिव हैं,
भक्तन के सिरताज ।।

ॐ

श्री योग महादिव्य रामायण

(विचार काण्ड)

दो० – प्रभो दयामय दयाकर, चरणों की दो सेव ।
सेवक रावो शरण में, प्रकट करो निज भेव ।।4002क
मेधावी इसको करो, जिमि ग्राहवे ज्ञान ।
रहस्य योग के गूढ़तम, समझ सके भगवान ।।4002ख
प्रभु सेवक यह आपका, है बैठा ला आस ।
तव 'विचार' यह लिख सके, इस काण्ड में दास ।।4002ग

सद्गुरु देव को कर प्रणाम, मुलखराज जिन का शुभ नाम ।
कर स्मरण योगेश्वर राम, सर्वसुखों के जो हैं धाम ।
महाप्रभु का लेय आशीश, शिव अवतारी जो जगदीश ।
सेवक लिपि करे वही लेश, मुलखराज के जो उपदेश ।
"विचार काण्ड" इस का है नाम, सीख योग की जहां अभिराम ।
सद्गुरु के आदेश को पाय, साधु ने एकान्त में जाय ।
खोज लिया इक सुन्दर स्थान, लागा करने योग ध्यान ।
षट्कर्म जो नाथ बताये, आसन सभी जो थे सिखाये ।

दो०–मुद्रा प्राणायाम सब, और प्रभु का ध्यान ।
साधु नित्य करने लगा, गुरु आज्ञा को मान ।। 4003

मुद्रा में वह बैठ दिखाता, बहु ध्यान में काल बिताता ।
प्रभु के दर्शन भी वह पाता, हर दम रूप प्रभु का ध्याता ।
रह विरक्त वह जग में ऐसे, रहता हो न जग में जैसे ।
अभ्यास ही था उसका काम, सुख दुख से वहां रह उपराम ।
भूख प्यास न होत प्रतीत, निद्रा को भी लीना जीत ।
योग तपस्या यही कहाये, मन वा तन जन के वश आये ।
दृढ़ निश्चय जब जन कर पाये, गुरु की आज्ञा लक्ष्य बनाये ।
उस का साधन फल ले आये, योग निष्ठ वह जन हो जाये ।

दिन पहला (प्रातः)

दो०–योग निष्ठ वह था भया, गुरु कृपा को पाय ।
एक वर्ष उपरान्त फिर, गुरु–आश्रम में आय ।। 4004क
गुरु चरणों में गिर गया, देह की सुधि भुलाय ।
आशिष दीनी नाथ ने, लीना उसे उठाय ।। 4004ख
बैठ रहा वह मौन ही, शब्द न मुख पै आय ।
योग निष्ठ की यह दशा, सद्गुरु ही लख पाय ।। 4004ग

स्वामी जी उस को कह पाय, "कुशल क्षेम से तो हो आय ।
साधो कह दो अपना हाल, किमि बिताया वर्ष का काल" ।
नाथ को साधु तब कह पाया, "नाथ कहूँ किमि तेरी दाया ।
आप सदैव संग रह पाते, कुशल क्षेम दास का वहते ।

कभी कभी थे प्रभु भी आते, दिव्य आशीष देकर जाते ।
साधन जो थे आप सिखाये, यथा सामर्थ्य मैं कर पाये ।
तेरी शरण पुनः हूँ आया, चरणी राखो कर के दाया'' ।
कहा स्वामी ''हे साध सुजान, हठ योग का तू पाया ज्ञान ।
आगे हम कुछ बात चलायें, राजयोग विषय कथ पायें ।

दो०–योग के दोय रूप हैं, राज व हठ पहचान ।
जो दोनों में विज्ञ हो, योगी वही पुमान ।। 4005क
सप्त साधन कर पाये, हठ योग के साध ।
आठ अंग अब जान कर, लो राज आराध ।। 4005ख

[1] आठ अंग अब तुम सुन पाओ, 'यम' 'नियम' आचरण में लाओ ।
'आसन' दृढ़ में स्थित हो जाओ, 'प्राणायाम' तभी कर पाओ ।
'प्रत्याहार' होय तभी आप, मिटता इन्द्रियों का संताप ।
'धारणा' सरल रीत से होय, 'ध्यान''समाधि' भी जन गोय'' ।
कहा साध ''हे नाथ महान, आठ अंग मैं लीने जान ।
एक बात मेरे मन आये, समाधान तुम्हीं से पाये ।
हठ का लक्ष्य नाथ बतलाया, राज का तो नहीं कथ पाया ।
वह भी जानन मैं अब चाहूँ, ज्ञान आप से वह पा जाऊँ ।

दो०–राज योग का लक्ष्य जो, कथन करें हे देव ।
सीखूँ तब इस योग को, रहूँ आप की सेव'' ।। 4006क

---

[1] राज योग के आठ अंग – 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. समाधि ।

सुनकर उस की बात को, स्वामी भये प्रसन्न ।
कहन लगे तब साध को, "हे साधो तुम धन्य ।। 4006ख

[1] जो प्रश्न तुम अभी कर पाया, मन पतंजली का पढ़ पाया ।
मन पतंजली के भी आई, बात प्रथम यही कह पाई ।
[2] चित्त की वृत्तियों का निरोध, जाने योग का लक्ष्य सुबोध" ।
कहा साध "हे सद्गुरु देव, यह तो गूढ़ बताया भेव ।
उसका भी कुछ लक्ष्य हो नाथ, रुकतीं वृत्तियां जब इक साथ" ।
कहा नाथ "इस प्रश्न द्वारा, लक्ष्य का लक्ष्य ही पूछा सारा ।
इस का उत्तर इसी में जान, जिमी पतंजली कीन बखान ।
[3] वृत्तियों का जब होय निरोध, आत्मा का तब मिलता बोध ।

दो० – वृत्तियों के निरोध पर, होता आत्म ज्ञान ।
द्रष्टा के ही रूप में, चित्त स्थित हो जान" ।। 4007

कहा साध "हे सद्गुरु देव, मिला योग का गुप्त यह भेव ।
एक बात मुझ को समझायें, वृत्तियां हम किसे कह पायें ।
निरोध जभी न उन का होय, रूप चित्त का तब क्या होय ।
वृत्तियों का जब तक न ज्ञान, समझ न आये कुछ भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, ठीक प्रश्न हैं ये तिहारे ।
सायं काल जभी चलि आओ, उत्तर इस का हम से पाओ" ।

---

[1] पातञ्जल योग दर्शन के रचयिता "महर्षि पतञ्जलि"

[2] योगश्चित्तवृत्ति निरोधः (योग दर्शन I.2)
अर्थ – चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है ।

[3] तदा द्रष्टु : स्वरूपेऽवस्थानम् । (योग दर्शन I.3)
अर्थ – चित्त की वृत्तियों के रुक जाने पर मन की आत्मा के स्वरुप में स्थिति होती है।

दिन पहला (सायं)

सायं भयी साध जब आया, स्वामी जी उस को समझाया ।
"तुम प्रश्न थे दो कर पाय, वृत्तियां जन किसे कह पाय ।
निरोध अवस्था जन की होय, चित्त जन का तब कैसा होय ।

दो० – प्रश्न दोय ये आपके, ज्ञान गूढ़ के मूल ।
जो उत्तर तुझ को मिले, मत जाना वह भूल ।। 4008

हे साध यह सभी जन जानें, मन की चंचलता पहचानें ।
मन को लो इक सागर मान, वृत्तियां लो तरंगें जान ।
सुगम न लहरों पर वश पाना, सुगम न वृत्तियों को ठहराना ।
शांत समुद्र जभी हो पाये, मन एकाग्र जभी हो जाये ।
दृश्य गगन का जल में आय, चित्त में आत्म रूप लखाय ।
सदा रहे यदि मन इस रूप, जान निरोध का यही स्वरूप" ।
पूछा साध "हे सद्गुरु देव, जानन चाहूँ और इक भेव ।
निरोध अवस्था न जब होय, मन का रूप बतावें सोय ।

दो० – मन का रूप होत क्या, जब निरुद्ध न होय ।
होय वह किस अवस्थ में, कथें अवस्था सोय"।। 4009

सुन कर साध की यह जिज्ञास, कहा नाथ ला मुख पै हास ।
* "चित्त निरुद्ध न जब हो पाय, वृत्तियों का वह रूप धराय ।
वृत्तियों का आवर्तन होय, जिस विध जल में भंवर विगोय ।
मन के दो ये रूप लो जान, वृत्तिरूप वा रुद्ध पहचान" ।
साध कहा "हे गुरु महाराज, बात स्पष्ट भयी मुझे आज ।
दोनों रूप चित्त के जान, ध्येय योग का लीन पहचान ।
निरोध स्थिति जभी बन पाये, योग युक्त जन तब हो जाये ।
निरोध में आत्मा का हो ज्ञान, अन्यथा चित्त जग में भ्रमान ।

---

* वृत्तिसारूप्यमितरत्र (योग दर्शन 1.4)
अर्थ – अन्यथा चित्त वृत्तियों का रूप होता है ।

दो०-प्रंश्न दूसरा नाथ जी, उस का भी दो ज्ञान ।
वृत्तियों का स्वरूप क्या, वह भी लूँ मैं जान''।। 4010

नाथ कहा ''अब भयी है देर, जभी आओगे कल सवेर ।
यही बात हम तब कर पायें, वृत्तियों का स्वरूप बतायें'' ।

दिन दूसरा (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, कर प्रणाम बैठ वह पाया ।
कहा नाथ ''हे साध प्यारे, योग संबंधी प्रश्न तिहारे ।
तुझे भयेगा इन से ज्ञान, रहस्य योग के लोगे जान ।
सरल बात ही मैं कह पाऊँ, वृत्तियों का स्वरूप बताऊँ ।
मन के सकल विचार लो जान, उन को वृत्तियां ही पहचान ।
जो भी चित्त का फुरना होय, जान लो वृत्ति है वह सोय ।
प्रवाह उन का निरन्तर होय, रुके न इक भी पल वह सोय ।
जागृत में मन रुके न भाई, टिके न स्वप्न में भी राई ।
एंक अवस्था और लो जान, उस में वृत्ति का नहीं भान ।

दो०-तीन अवस्था चित्त की, स्वप्न व जागृत जोय ।
तीज अवस्था जो कथी, सुषुप्ति जानो सोय''।। 4011

पूछा साध ''हे नाथ महान, सुषुप्ति का कुछ दीजो ज्ञान ।
क्या जन निरोध उसे ले जान, वृत्ति का नहीं जब हो भान'' ।
बोले नाथ ''न ऐसा जानो, सुषुप्ती को निरोध न मानो ।
यह स्थिति विश्राम की भाई, ठहर सके जब मन भी राई ।
आठों पहर जो करता काम, उसको भी कुछ मिले आराम ।
तीन अवस्था ये लो जान, निरोध अवस्था चौथी मान ।
कठोर अभ्यास करके साध, चतुर्थ अवस्था लो आराध ।

वृत्तिन का निरोध है जाना, कठिन कार्य है सबने माना ।
वृत्तिन की तुम पूछी बात, वही बतलाऊँ तुम को तात ।
सागर की जिमि तरंग अनन्त, मन की वृत्तियां भी बे अन्त ।

दो० – *गणना तो बे–अन्त है, वृत्तियों की महाभाग ।
भेदों के अनुसार ही, पांच करें हम भाग ।। 4012

स्वरूप से वृत्तिन दो प्रकार, क्लिष्ट व अक्लिष्ट के अनुसार" ।
पूछा साध "हे नाथ बतायें, दो प्रकार जो वे कथ पायें ।
क्लिष्ट का अर्थ क्या हो नाथ, कहें अक्लिष्ट इसी के साथ" ।
कहा नाथ "हे सुन लो भाई, क्लिष्ट वृत्ति सदैव दुखदाई ।
मन के भाव जो होंय अशुद्ध, क्लिष्ट उन्हें कहें जन बुद्ध ।
शुद्ध भाव अक्लिष्ट कहावें, सुख सदैव जन को दे पावें ।
क्लिष्टाक्लिष्ट ये दोनों भेद, गुण आधार से जानो भेद ।
[1]पांच भेद जो अब बताऊँ, स्वरूप भेद कथन में लाऊँ ।
प्रमाण विपर्यय दो ये भेद, विकल्प तीसरा जानों भेद ।
निद्रा चौथा लो तुम जान, स्मृति पांचवां भेद पहचान ।

दो० – पांच भेद में बंट रहीं, सकल वृत्तियां मीत ।
लक्षण उन के अब कहूं, सुनना ला कर चीत ।। 4013

[2] प्रथम सुनो 'प्रमाण' की बात, उस के तीन भेद हैं तात ।

---

* वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाक्लिष्टाः (योग दर्शन 1.5)
अर्थ – वृत्तियों के पांच भेद हैं । प्रत्येक क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार की है ।

[1] प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः (योग दर्शन 1.6)
अर्थ– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति – ये पांच प्रकार की वृत्तियां हैं ।

[2] प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि । (योग दर्शन 1.7)
अर्थ – प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम – भेद से तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति है ।

प्रमाण के जो भेद हैं तीन, 'प्रत्यक्ष' 'अनुमान' दो ये चीन ।
'आगम' तीजा भेद पहचान, मिला ऋषियों से जो है ज्ञान ।
मैं प्रत्यक्ष की कह दूं बात, सन्मुख जो वह जानो तात ।
मन में वह ही रूप समाये, सन्मुख जो देखन में आये ।
परन्तु अब इक बात बताऊँ, सन्मुख वस्तु यदि नहीं पाऊँ ।
फिर भी वस्तु चित्त में आय, और न संशय कुछ रह पाय ।
ऐसा संभव तभी हो पाय, द्रष्टा यदि 'अनुमान' लगाय" ।
कहा साधु "हे दीना नाथ, दे उदाहरण करें सनाथ ।

दो०-दे उदाहरण यदि कथें, हे नाथ यह ज्ञान ।
समझ सकूं मैं तब प्रभु, जो कथा 'अनुमान' "॥ 4014

कहा नाथ "हे साध प्रवीण, यह उदाहरण नहीं नवीन ।
धूआं देख अनुमान लगायें, रूप अग्नि का मन में लायें" ।
कहा साधु "हे सद्गुरु देव, स्पष्ट भया है मुझे यह भेव ।
भेद तीजा प्रमाण का नाथ, वह बतला अब करें सनाथ" ।
कहा नाथ " हे साध प्यारे, ऋषियों ने जो वचन उचारे ।
उन को हम सच कर ही मानें, बात सभी निज मन में आनें ।
शास्त्रोक्त जो बात हो भाई, संशय उस में होय न राई ।
वही प्रमाण का तीजा भेद, 'आगम' कथें उस को ही वेद ।

दो०-है 'आगम' प्रमाण भी, मान्य जगत को साध ।
उसे नहीं जो मानता, होय बड़ा अपराध"॥ 4015

कहा साध ने "हे महाराज, नूतन ज्ञान मिला है आज ।
जो प्रमाण के भेद बताये, प्रत्यक्ष व अनुमान बताये ।
और बताया आगम नाथ, यह सब सुन में भया सनाथ ।
'विपर्यय' वृत्ति का अब ज्ञान, आप से ग्रहण करूं भगवान" ।

कहा नाथ "अब भया कवेला, आना शाम होय जब वेला" ।
इतना बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में तब सिधाये ।

दिन दूसरा (सायं)

सायं भयी साधु चलि आया, उसे नाथ जी पास बिठाया ।
[1]और कहा "हे साध सुजान, 'विपर्यय' का मैं दूं अब ज्ञान ।

दो० – भये भ्रांत जब मन कभी, सत्य का हो न भान ।
असत बात मन में बसे, यह 'विपर्यय' लो जान ।। 4016

दृष्टांत देकर अब बतलाऊँ, वृत्ति विपर्यय मैं समझाऊँ ।
बालक एक मार्ग चल पाया, रस्सी देख बहुत घबराया ।
'सांप सांप' इस विध चिल्लाया जन समूह सब भागा आया ।
पास जाय जब सब ने देखा, रस्सी का इक टुकड़ा पेखा ।
बालक भ्रांति में था आया, रस्सी सांप समझ घबराया ।
वृत्ति 'विपर्यय' यही कहलाये, यदा कदा मन वश कर पाये" ।
कहा साध "मैंने यह जाना, इस वृत्ति को ठीक पहचाना ।
इस वृत्ति के वश जब आये, बहुत उपद्रव जन कर पाये ।
मित्र को लेवे शत्रु जान, शत्रु को लेवे मित्र मान ।
परिणाम भयंकर होय नाथ, बचावे गुरु ही दे कर हाथ ।

दो० – विपर्यय वृत्ति के कारणे, भारत भया गुलाम ।
दुखदायक ही जान लें, 'विपर्यय' का परिणाम" ।। 4017

कहा नाथ "तुम ठीक कह पाय, ज्ञान जो जीवन में न लाय ।

---

[1] विपर्ययो मिथ्याज्ञानमद्रूपप्रतिष्ठम् । (योगदर्शन I.8)

अर्थ – विपर्यय मिथ्याज्ञान है, जो उस पदार्थ में प्रतिष्ठित नहीं है ।

पढ़ सुन कर भी रहे अनजान, 'विपर्यय' डुबाये हमरा ज्ञान ।
[1] हे साधो अब लो समझाऊँ, 'विकल्प' की वृत्ति मैं बताऊँ ।
मन जब ख्याली पुल बनाये, अपनी रचना वह रच पाये ।
जिस का न को हो आधार, ख्याली पुल हो सब प्रकार ।
अपनी सोच में ही डुबाना, शून्य मध्य रचना रच पाना ।
वृत्ति वही विकल्प कहाती, कल्पित दृश्यों में खो जाती" ।
बोला साध सुन कर यह बात, "हे देव सब आप को ज्ञात ।
इस वृत्ति का क्या हो प्रयोग, जग में कर सकें सभी लोग ।

दो० – 'विकल्प वृत्ति' हे सद्गुरु, है जो मन के साथ ।
इस से जन का लाभ है, अथवा हानि नाथ"।। 4018

सुनी साध की जभी जिज्ञास, कहन लागे ला मुख पै हास ।
"हे साध तुम भूल हो पाये, वृत्तिन के दो भेद बताये ।
सब वृत्तियों के दोनों रूप, क्लिष्ट और अक्लिष्ट स्वरूप ।
क्लिष्ट रूप में दुख वह दायी, रूप अक्लिष्ट सुख प्रदायी ।
जो कुछ जग में बन है पाया, है विकल्प ने वह उपजाया ।
मन संकल्प प्रथम कर पाये, रचना फिर जग में हो जाये ।
यह अक्लिष्ट है इसका पक्ष, समझ लो तुम साध हे दक्ष ।
क्लिष्ट रूप तब होता तात, केवल सोच डूबे दिन रात ।

दो० – दिन रात ही सोच करे, ख्याली रचे प्लाव ।
निर्मत भवन आकाशी, रह डूब अहंभाव"।। 4019

सुनकर नाथ का यह उपदेश, साध कहा "हे परम योगेश. ।

---

[1] शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः । (योग दर्शन I.9)

अर्थ – शब्द से उत्पन्न जो ज्ञान – उस के पीछे चलने का जिसका स्वभाव हो, और जो वस्तु की सत्ता की अपेक्षा न रखता हो । इस प्रकार का ज्ञान विकल्प कहलाता है।

संशय मेरा आप निवारा, समझा भेद वृत्ति का सारा ।
अगली वृत्ति अब महाराज, श्रवण करूँ मैं आप से आज" ।
कहा नाथ "अब मैं बतलाऊँ, और उस वृत्ति को समझाऊँ ।
लेवो उस को तुम यों जान, परिचित उस से सकल जहान ।
[1] 'निद्रा' वृत्ति जोय कहलाय, सब जग को वह सुख दे पाय ।
न कोई उस का है आधार, फिर भी रचना होय अपार ।
चित्त रहे पर उसमें भ्रांत, स्वप्नों में चित्त रहत अशांत ।
उस का दूसर रूप सुखदाय, सुषुप्ति नाम से जो कहलाय ।

दो० – निद्रा के दो रूप हैं, स्वप्न सुषुप्ति जान ।
स्वप्न में मन भ्रांत हो, शांत सुषुप्ति मान ।। 4020

चार वृत्ति तुम को बतलाईं, सरल रूप से सब समझाईं ।
सबन के तुम नाम बतलाओ, और स्मरण सदा रख पाओ" ।
साधु ने सभी नाम बताय, 'प्रमाण' 'विपर्यय' कथ उस पाय ।
'विकल्प' व 'निद्रा' भी कथ दीन, और विनय फिर उस ने कीन ।
"अगली वृत्ति नाथ बतायें, सरल रूप से ही कथ पायें" ।
नाथ कहा "हे साध सुजान, प्रातः काल वह करें बखान ।
प्रातः काल शीघ्र चलि आना, अगली वृत्ति तभी सुन पाना" ।

दिन तीसरा (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, आय नाथ को माथ झुकाया ।

दो० – बैठ गया जब पास वह, कहा नाथ "हे साध ।
अगली वृत्ति तुझे कहूं, जिसका कार्य अगाध ।। 4021

---

[1] अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा । (योग दर्शन I.10)

अर्थ – (जाग्रत स्वप्नावस्था की वृत्तियों के) अभाव की प्रतीति को आश्रय करने वाली वृत्ति निद्रा है ।

[1]उस का नाम स्मृति लो जान, आधार सभी ज्ञान का मान ।
देखा सुना कहा हो जोई, स्मरण रहे वह मन में सोई ।
उस वृत्ति को योगी मानें, स्मृति उसी का नाम बखानें ।
स्मृति के दो रूप होंय भाई, भ्रांत स्मृति तो बहु दुखदाई ।
बुद्धि का होय उस से नाश, जीवन का भी होत विनाश ।
अभ्रांत स्मृति दूसरी जान, सर्व ज्ञान की जो है खान" ।
सुनी साध जब गुरु की बात, पूछा उस ने "हे जग त्रात ।
स्मृति भ्रांत कैसे हो जाये, विनाश बुद्धि का जो कर पाये ।

दो०–सरल रूप से नाथ जी, मिले आप से ज्ञान ।
स्मृति कथी है आप ने, ज्ञान सर्व की खान ।। 4022क
किस विध वह विभ्रांत हो, स्पष्ट कथें हे देव ।
भ्रांति से तभी बच सकें, रह आप की सेव" ।। 4022ख

कहा नाथ, "हे साध सुजान, तेरा प्रश्न ज्ञान की खान ।
इस का उत्तर मैं दे पाऊँ, राम प्रभु का कथन सुनाऊँ ।
राम प्रभु ने जो बतलाया, वह स्मरण हो मुझ को आया ।
विषयों को जभी मन ध्याये, स्मृति भ्रांत तब ही हो जाये ।
जिस विषय का करे मन ध्यान, उसी का संग करे इन्सान ।
संग बढ़ाये काम को मीत, विषय प्रीत की ये है रीत ।
काम का संग क्रोध से जान, दोनों का संग अनादि मान ।
काम क्रोध का ऐसा संग, दायां बायां जैसे अंग ।
क्रोध को अग्नि लो तुम जान, संमोहन उस का धुआं मान ।
स्मृति उसी से होय विभ्रांत, भ्रांत चित्त रहे सदा अशांत ।

---

[1] अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः (योग दर्शन I.11)

अर्थ–पूर्व में अनुभव किए हुए विषय का स्मरण रहना स्मृति है ।

दो०–क्रोध की सीमा न रहे, जन कामी जब होय ।
उपजत तब संमोह ही, भ्रांत स्मृति फिर होय ।। 4023

हे साधो तुम पूछी बात, स्मृति भ्रांत किस विध हो जात ।
राम प्रभु ने जो बतलाया, वह मैं उत्तर दे हूं पाया ।
प्रश्न और जो तव चित्त होय, पूछ लेवो अब वह भी सोय" ।
कहा साध "हे मेरे स्वामी, आप सर्वज्ञ अन्तर्यामी ।
वृत्तिन के दो रूप जताये, संग पांच हैं भेद जताये ।
क्लिष्ट अक्लिष्ट दो ये रूप, समझा मैने वह स्वरूप ।
पांच भेद भी जो बतलाये, स्मरण सभी मैंने कर पाये ।
'प्रमाण' और 'विकल्प' दो भेद, पाया समझ मैं बिन खोद ।
'विपर्यय' को भी मैंने जान, लीनी 'निद्रा' 'स्मृति' पहचान ।

दो०–पांचों किमि अक्लिष्ट हों, और वे सभी क्लिष्ट ।
स्पष्ट बतायें नाथ जी, जिमि हो भ्रांति नष्ट" ।। 4024

सुनी साध की यह जिज्ञास, स्वामी लाये मुख पै हास ।
और कहा "हे प्रिय मम तात, सीधी सी तो है यह बात ।
इक उदाहरण दे बतलाऊँ, तेरी सारी भ्रांति मिटाऊँ ।
एक पुरुष हम आता देखें, प्रत्यक्ष रूप उसे उलेखें ।
प्रत्यक्ष वृत्ति यही मम तात, रूप दो की कहूं अब बात ।
सरल दृष्टि से उस को देखो, अथवा मित्र भाव से पेखो ।
तब यह वृत्ति होय अक्लिष्ट, अब समझो वह किमि हो क्लिष्ट।
मन में आय वह शत्रु आता, भय भीत तब मन हो जाता ।

दो०–वह वृत्ति भये क्लिष्ट तब, दोनों रूप स्पष्ट ।
जो पूछी थी बात तुम, क्या तव भ्रांति नष्ट ।।4025क

दो०-यदि जिज्ञासा और हो, आना सायं काल ।
कहना बिन संकोच तुम, तेरे सुनें सवाल''।। 4025ख

उसे कह स्वामी उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन तीसरा (सायं)

सायं भयी साध आ पाया, आ चरणि दण्डौत कर पाया ।
स्वामी जी ने कही तब बात, ''पूछो प्रश्न जो हो मम तात'' ।
बोला साध ''हे योगिराज, मन में प्रश्न नहीं कुछ आज ।
भेद वृत्तिन के लीने जान, और उनके स्वरूप पहचान ।
क्लिष्ट अक्लिष्ट व उनके भेद, यह भी समझ पाया बिन खेद ।
एक बात थी आप बताई, वृत्ति रोध की थी कथ पाई ।
उतंग तरंगों के सम रूप, वृत्तिन का आप कथा स्वरूप ।

दो०-वृत्तियों का स्वरूप जो, कथा तरंग समान ।
किस विध उन का रोध हो, यह चाहूँ मैं ज्ञान'' ।। 4026

सुन कर उस की मार्मिक बात, नाथ कहा ''प्रिय मम तात ।
यह जिज्ञासा योग की मूल, शाश्वत कहूँ मैं एक असूल ।
वृत्तिन का तभी होय निरोध, दो का हो जब दृढ़तम बोध ।
दो ही कारण रोध के जान, तीजे की नहीं कर पहचान'' ।
बोल उठा तब साध सुजान, ''उन का मुझ को दीजो ज्ञान ।
दोनों कारण मुझे बतायें, सरल रूप से सब समझायें ।
मैं अज्ञ तुम तज्ञ हो नाथ, दे ज्ञान मुझे करो सनाथ'' ।
इतना कथ उस शीश झुकाया, आशिष दे तब नाथ बताया ।

दो०-स्वामी बोले वचन तब, ''हे साध प्रवीण ।
नूतन कहूँ न बात मैं, ज्ञान कहूँ प्राचीन ।। 4027

उपाय रोध के दो हि जानो, प्रथम तुम वैराग्य पहचानो ।
[1] अन्य तो अभ्यास है भाई, इन बिना नहीं योग कमाई'' ।
कहा साध ''हे गुरु महाराज, मिले ज्ञान अभ्यास का आज ।
साधक करे कैसा अभ्यास, जिस से पाये वह सिद्धि खास'' ।
सुन कर उस की यह जिज्ञास, बात बताई योग की खास ।
''हे साधो मैं तुझे बताऊँ, अभ्यास का स्वरूप जताऊँ ।
[2] एक लक्ष्य पर चित्त टिकाना, शास्त्र यही अभ्यास बखाना ।
जिस से चित्त स्थिर हो जाये, साधक यत्न वही कर पाये ।

दो०–जोय यत्न साधक करे, चित्त स्थिरता हेत ।
वह अभ्यास कहलाये, सिद्धि पाने हेत'' ।। 4028

कहा साध ''हे नाथ प्यारे, मन मेरे में संशय भारे ।
उन का समाधान कर पाओ, मेरा मारग सुखद बनाओ ।
प्रथम बताओ हे मम नाथ, कहां स्थिर कर मन बने सनाथ ।
दूसरी बात यह मम स्वामी, किमि टिके चित्त अन्तर्यामी ।
मन स्थिरता न सुगम है देव, कथन करें इस के कुछ भेव'' ।
सुन कर नाथ कहा ''हे साध, जो चाहे लूं योग आराध ।
निश्चित करे वह निज का लक्ष्य, जो बतलायें सद्गुरु दक्ष ।
यह तो आगे चल बतलायें, दूसर बात अभी कह पायें'' ।
करके श्रवण साध कह पाया, ''नाथ जिमि है आप फरमाया ।
वही ज्ञान तुम से सुन पाऊँ, और चित्त में स्थिरता लाऊँ'' ।

---

[1] अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध : (योग दर्शन I.12)
अर्थ – अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है ।

[2] तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः (योग दर्शन I.13)
अर्थ– उन में (दोनों अभ्यास और वैराग्य में) से चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास है ।

कहा नाथ "अभ्यास की बात, तुझे कहूं मैं स्पष्ट हे तात ।
प्रथम जानो मन का स्वभाव, फिर मैं कहूँगा अपने भाव ।

दो०-ठीक बात तुम ने कही, हम जो हैं सुन पाय ।
मन प्रमाथी है बड़ा, सहज न वश में आय ।। 4029क
मन चंचल बलवान भी, दुर्निग्रही कहाय ।
दृढ़ इस को अति जान लो, सहज न वश में आय ।। 4029ख
जाग्रत में मन भागता, सोते चैन न पाय ।
आंधी सम चलता रहे, सहज न वश में आय ।। 4029ग
मन हृदय में बैठ कर, सकल कर्म कर पाय ।
अजर अमर उस को कहें, सहज न वश में आय ।। 4029घ
सहज न वश में आय मन, ऋषियन का फरमान ।
दृढ़तम ही अभ्यास कर, जन सफलता पान" ।। 4029ङ
श्रवण कीन जब साध ने, सद्गुरु का फरमान ।
हाथ जोड़ कहने लगा, "हे मेरे भगवान ।। 4029च

दृढ़तम अभ्यास जो बखाना, होवे किस विध कृपा निधाना ।
क्या वह सकूं मैं कर अभ्यास, जानन चाहूं बात यह खास" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, दृढ़ संकल्पी जो इन्सान ।
असंभव उस को कुछ न होय, सफलता उस के पग को धोय ।
पर यह तुम को स्पष्ट बताऊँ, नियम जो इसके हेतु कथ पाऊँ ।
[1]तीन नियम तुम मुख्य लो जान, सफलता उनके आश्रित मान ।

[1]स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः । (योग दर्शन 1.14)
अर्थ - किन्तु वह (पूर्वोक्त अभ्यास) दीर्घ काल पर्य्यन्त, निरन्तर व्यवधान रहित, ठीक-ठीक श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान किया हुआ, दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है ।

दीर्घ काल प्रथम है भाई, योग निरन्तर दूज कहाई ।
श्रद्धा नियम तीजा लो मान, ये ही तीनों नियम लो जान ।

दो०–तीन नियम के आसरे, दृढ़तम हो अभ्यास ।
करें उलंघन नेम का, मिले न कुछ भी खास।। 4030

कल प्रात तुम चल कर आना, विस्तृत बात तभी सुन पाना" ।
स्वामी कह इस विध उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन चौथा (प्रातः)

हुई प्रातः साध चलि आया, आय नाथ को शीश झुकाया ।
आर्शिवाद नाथ से पा कर, कहा साध तब माथ झुकाकर ।
"हे नाथ ! मैंने सुन पाये, तीन नियम जो आप बताये ।
'दीर्घ काल' था प्रथम बताया, नियम 'निरन्तर' दूज जताया ।
तीजा नियम कहा था स्वामी, 'श्रद्धा' का तुम अन्तर्यामी ।
तीनों का जो गुण हो देव, सुनूं बैठ मैं आप की सेव ।
मैं चाहूं कर लूं अभ्यास, दृढ़तम ही रह आप के पास ।

दो०–दृढ़तम कर अभ्यास मैं, बनूं योगी प्रवीण ।
करिये किरपा नाथ मम, मैं सेवक हूँ दीन ।। 4031

दीर्घ काल का क्या परिमाण, जानन चाहूं मैं भगवान ।
कितना काल दीर्घ कह पायें, इस का भाव मुझे समझायें" ।
सुन साध की स्पष्ट ये बात, कहा नाथ "सुन लो मम तात ।
दीर्घ काल का स्पष्ट परिमाण, बता सके न कोई इन्सान ।
जब तक सफलता जन न पाये, करता हि अभ्यास वह जाये ।
सफलता उस के लागे हाथ, छोड़े न अभ्यास का साथ ।
आजीवन वह योग कमाये, धैर्य न त्यागे, न घबराये ।

वृत्तियों के निरोध के हेत, रात दिवस वह रहे सचेत ।

दो०-इस विध दीरघ काल जो, करता है अभ्यास ।
दृढ़ भूमि उसे योग की, प्राप्ति की हो आस" ।। 4032क
कर श्रवण इस बात को, खड़े साध के कान ।
"क्या योग इतना कठिन, आजीवन परिमाण" ।। 4032ख
बात पते की पूछ ली, सद्गुरु से उस काल ।
"मर जाये बिन सिद्धि यदि, उस का क्या हो हाल ।। 4032ग

जिस जीवन में न सिद्धि पायी, योग की कीनी क्या कमाई ।
विफल भया तब सब प्रयास, मेरे चित्त में डर यह खास ।
मम संशय का करो निवारण, जिस किसी भी हे प्रभो कारण" ।
सुन कर उस की यह जिज्ञास, मुलख कहा ला मुख पै हास ।
"हे साध यह प्रश्न तिहारा, इस में न कुछ तथ्य है भारा ।
तन मरत पर जीव नहीं मरता, निज ज्ञान वह ले कर चलता ।
योगी योगी के घर जाये, उस तन में फिर योग कमाये ।
पाछल साधन आये काम, सिद्धि पावे फिर अभिराम ।
इस विध जन्म जन्म की भाई, काम आय है योग कमाई ।

दो०-जन्म जन्म की साधना, करती जन को सिद्ध ।
संशय इसमें है नहीं, शास्त्रों में प्रसिद्ध ।। 4033

इस विध साधन तुम कर पाओ, दीर्घ काल को भूल न जाओ ।
इस संग कहूँ और इक बात, निरन्तर करना साधन तात ।
प्रतिदिन साधन करे न साध, उस का मग नहीं हो निर्बाध ।
विघ्नों से नहीं विघ्नित होय, वही साधक ही सिद्धि गोय ।
पर इस में इक और भी बात, श्रद्धा बिन नहीं सिद्धि तात" ।

साध कहा "नहीं समझी बात, श्रद्धा किसे कहें हम तात ।
दीर्घकाल अभ्यास को जान, करें निरन्तर तीन पहचान ।
किस प्रति होय श्रद्धा नाथ, यह बतला कर करें सनाथ" ।
सुनी नाथ जी साध की वाणी, कहन लगे "हे साध ज्ञानी ।

दो०–श्रद्धा को तुम जान लो, यह है प्राण समान ।
बिन प्राण न जान जिमि, न बिन श्रद्धा ध्यान" ॥ 4034

पुनः साध ने प्रश्न यह कीन, "नाथ पाऊँ मैं ज्ञान नवीन ।
श्रद्धा का आधार जो होय, जानूँ मैं अब आप से सोय" ।
कहा नाथ " जब सायं आओ, इस का उत्तर हम से पाओ" ।

दिन चौथा (सायं)

जभी भया फिर सायं काल, साध ने आ तब कीन सवाल ।
"नाथ श्रद्धा का क्या आधार, मम भ्रांति ~~कर~~ का करें निवार" ।
कहा स्वामी "तुम लो यह जान, त्रय आधार इस के लो मान ।
साधक स्वयं प्रथम आधार, होवे आत्म विश्वास अपार ।
गुरु चरणों में दृढ़ विश्वास, दूजा कारण जानों खास ।

दो०–दो कारण मैंने कथे, तीजा भी लो जान ।
योग मारग में आस्था, जिस बिन न कल्याण" ॥ 4035

सुन साध ने नाथ की वाणी, कहन लगा "हे जग कल्याणी ।
दीना तुम अभ्यास का ज्ञान, समझ लीना मैं सब भगवान ।
अब कहें वैराग्य की बात, सुनूं आपसे मैं जगत्रात ।
बिन वैराग्य अभ्यास न होय, सुने आप से वचन मैं सोय" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, कहूं योग के रहस्य न्यारे ।
बिन वैराग्य न योग हो पाय, पुरुष वैरागी योग कमाये ।

कहूँ वैराग्य का मैं स्वरूप, इसके जानों दो तुम रूप ।
अपर वैराग्य इक है भाई, दूजा पर वैराग्य कहाई ।

दो०-इन ही दोनों रूप का, कर दूं मैं विस्तार ।
ये योग के मुख्य हैं, जानों तुम आधार ।। 4036

अपर जो वैराग्य कहलाय, वह योगी व्यवहार में लाय ।
[1] 'वशीकार' भी उसका नाम, करत योगी को पूर्णकाम" ।
पूछा साध "हे सद्गुरु देव, जानन चाहूं मैं यही भेव ।
अपर वैराग्य बताओ नाथ, बता कर लक्षण करो सनाथ ।
उसका पालन जिमि कर पायें, सेवक को सब आप बतायें" ।
उच्चित साध की सुन जिज्ञास, कहा नाथ "ये प्रश्न हैं खास ।
अपर वैराग्य का लक्षण मीत, सुन लो मुझ से लाकर चीत ।
विषय जगत के जितने भाई, उन प्रति इच्छा न हो राई ।

दो०-इच्छा जिस की न भये, विषय किसी में मीत ।
देखा वा जो हो सुना, हो न लेश प्रीत" ।। 4037

सुन नाथ की स्पष्ट ये वाणी, कहा साध "हे जग कल्याणी ।
मेरी समझ में न यह आये, त्याग विषय जन किमि कर पाये ।
अन्न बिना को न रह पाये, आंख जगत को देख दिखाये ।
दो कान सुनें बिन ही प्रयास, रोक सकें क्या नाक का श्वास ।
ठंडी ताती वायु आवे, स्पर्श करे वह रुक न पावे ।
असंभव विषयों का परित्याग, किस विध हो तब यह वैराग" ।

---

[1] दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् (योग दर्शन 1.15)
अर्थ - दृष्ट और अनुश्रविक विषयों में जिस की तृष्णा नहीं रही है उसका वशीकार नाम वाला वैराग्य (अपर वैराग्य) है ।

सुन कर साध की तार्किक बात, कहा नाथ "सुन लो मम तात ।
ठीक बात तुम हो कह पाय, इस में न कोई संशय लाय ।
तन का विषयों संग संयोग, असंभव इनका जान वियोग ।

दो०–तन विषयों से है जुड़ा, विलग न वह हो पाय ।
मन को ही है मोड़ना, यही योग कहलाय" ।। 4038

कहा साध "तव बात है ठीक, मुझे भ्रांत थी भयी अलीक ।
चित्त निरोध कहावे योग, कहें ऐसा सब विद्वद् लोग ।
विषयों में नहीं मन लुभावे, योग साधन तभी हो पावे ।
मैं लीना वैराग्य पहचान, आगे का प्रभो दीजो ज्ञान" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, लिया अपर वैराग्य तू जान ।
[1] परवैराग्य अभी सुन पाओ, समझो और अमल में लाओ ।
आत्म ज्ञान जब जन पा जाय, परवैरागी तभी हो पाय ।
विषय सभी त्रिगुणात्मक जान, उनसे परे है पुरुष महान ।

दो०–ज्ञान 'पुरुष' का जब मिले, मन हो परम विरक्त ।
परवैरागी जगत में, कभी न हो आसक्त" ।। 4039

सुनकर सद्गुरु का उपदेश, कहा साध "हे गुरु सर्वेश ।
परवैराग्य तभी हो पाये, ज्ञान पुरुष का जब हो जाये ।
ऐसा यदि है यही विधान, आत्म ज्ञान नर किस विध पान ।
आत्म ज्ञान का जोय उपाय, वह भी नाथ कथन में आय" ।
कहा नाथ "अब भया कुवेला, आना जब हो प्रातः वेला" ।

---

[1] तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् (योग दर्शन 1.16)
अर्थ – आत्म ज्ञान के पश्चात गुणों प्रति तृष्णा रहित हो जाना परवैराग्य है ।

दिन पांचवां (प्रातः)

प्रातः भयी साध चलि आया, आश्रम का था दृश्य सुहाया ।
कलरव पक्षियों का मन भाये, स्वामी जी भी बाहिर आये ।
साध कीना दण्डौत प्रणाम, बैठ गये तब सुख के धाम ।

दो०–विनय उचारी साध ने, "हे मेरे भगवान ।
उपाय आत्म ज्ञान का, पूछूं मैं अनजान" ।। 4040

कहा नाथ "क्या कथूं उपाय, आत्म ज्ञान विरला जन पाय ।
स्वात्मा का जो संप्रज्ञान, उस का पाना नहीं आसान ।
'संप्रज्ञात' समाधि में भाई, झलक मिले आत्मा की राई" ।
पूछा साध "नाथ बतलायें, 'संप्रज्ञात' किमि जन ग्राहें ।
उसका लक्षण क्या भगवान, उस की होती क्या पहचान" ।
बोले स्वामी "साध प्यारे, प्यारे लगते प्रश्न तिहारे ।
समाधि 'संप्रज्ञात' महान, उपाय उसी का करूं बखान ।
भूले जब जन देह का बोध, आत्मा की तब आवे सोध ।

दो०–उपाय संप्रज्ञात के, मैं कथूं हे मीत ।
जो करता अभ्यास है, होय आत्म प्रतीत ।। 4041क
पांच उपाय हैं कथे, किसी एक से मीत ।
भूले जन जब देह को, होय आत्म प्रतीत" ।। 4041ख

कहा साध "हे सद्गुरु देव, कथें उपायों का सब भेव ।
[1] पांच उपाय कौन से नाथ, आत्म बोध लगे जिमि हाथ" ।

---

[1] वितर्क विचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः (योग दर्शन I.17)

अर्थ – वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता, रूप – इन के अनुसरण से 'संप्रज्ञात' (आत्म साक्षात्कार) की प्राप्ति होती है ।

कहा स्वामी "हे साध सुजान, पांचों की तुम करो पहचान ।
'वितर्क' एक दूजा 'विचार', तीसरा है 'आनन्द' अपार ।
चौथा 'अस्मिता' लेवो जान, पंचम 'रूप' की कर पहचान ।
इन पांचों का है गुण महान, देह भूले हो आत्म ज्ञान" ।
कहा साध "जो पांच बताय, नाम मुझे भी याद हो पाय ।
'वितर्क' और 'विचार' उपाय, 'अस्मिता' वा 'आनन्द' उपाय ।
पंचम 'रूप' आप बताया, नाम स्मरण मुझे हो पाया ।

दो०–पांचों के ये नाम हैं, उन के गुण महान ।
चाहूं सुनना आपसे, सद्गुरु दया निधान" ।। 4042

सुनी नाथ उस की जिज्ञास, कहन लगे ला मुख पै हास ।
"मुझ से सब के गुण सुन पाना, और सुन फिर अमल में लाना ।
प्रथम उपाय जो प्रभु बताया, है 'वितर्क' वह कथनी आया ।
उसका भेद तुझे बतलाऊँ, बात रहस की मैं समझाऊँ ।
तार्किक जन इस भेद को जान, गुण इस का विशेष पहचान ।
उन का है दृढ़ मत यह भाई, आत्मा नित्य देह अस्थाई ।
आत्मा को वे व्यापक जानें, सब घटों में उसे पहचानें ।
आत्मा से ही उन का प्यार, जगत प्रति वैराग्य अपार ।
सदैव मस्ती में रह पायें, जन वितर्की वही कहलायें ।

दो०–ज्ञानवान वह जन भये, परवैरागी होय ।
जन ऐसा विरला मिले, कोटिन में ही कोय" ।। 4043

सुन कर सद्गुरु का उपदेश, कहा साध ने "नाथ महेश ।
गुण तर्क का मैं सुन पाया, कथ 'विचार' अब करिये दाया" ।
कहा नाथ "सुन लो मम मीत, प्रबल विचार हो जिस के चीत ।
उस को होत है आत्म बोध, वृत्तियों का भी होत निरोध" ।

पूछा साध "वह क्या विचार, जिससे ज्ञान यह मिलत अपार"।
कहा नाथ "तुम लो यह जान, शास्त्र सांख्य में ज्ञान महान।
उस के तत्वों का हो बोध, जिनसे भिन्न है आत्म बोध।
अनात्म आत्म का सब ज्ञान, प्रदान करत है वह विज्ञान।
तत्व विचार से हे मम मीत, सत्य की हो जन को प्रतीत।
विषयों से वह रहे विरक्त, आत्म बोध में ही अनुरक्त।

दो०-रह कर इसी विचार में, परवैरागी होय।
जन ऐसा विरला मिले, कोटिन में ही कोय" ॥ 4044क
इतना कह कर नाथ जी, उठ गये उस प्रात।
कहा "सायं फिर आना, हे साध मम तात" ॥ 4044ख

दिन पांचवां (सायं)

दो०-आ गया जब साध वह, कहा नाथ "हे तात।
विषय आज का गूढ़ है, सुनो बैठ साक्षात ॥ 4044ग

अब कथूं आनन्द की बात, सुनना तुम ला ध्यान हे तात।
'आनन्द' में रहे सदा जो मीत, ज्ञान परिपूरित उस का चीत"।
सुनी साध जब गुरु की बात, कहन लगा "हे जग के त्रात।
सुखी पुरुष से ज्ञान हो दूर, वह तो माया में रहे चूर।
स्पष्ट बात अपनी कर पायें, मन्द बुद्धि मैं हूं, समझायें"।
सुनी साध की बात स्वामी, मुस्का बोले अन्तर्यामी।
"मन्द बुद्धि तुम हो न भाई, जगत का सुख न सुख प्रदाई।
आनन्द कोष सब के घट बीच, जब मन उसमें रहे समीच।

दो०-अन्तर्मुख तब जन भये, बसे कोष आनन्द।
ज्ञान और वैराग्य को, देता है 'आनन्द" ॥ 4045

साध ने तभी कीन सवाल, "हे स्वामी तुम दीन दयाल ।
कर कृपा मुझे आप बतायें, 'कोष' किसे सब जन कह पायें" ।
कहा स्वामी "हे साध सुजान, कोष का दूं मैं तुम को ज्ञान ।
कोष पांच हैं लो तुम जान, मन की स्थिति अनुसार पहचान ।
जिस स्थिति में चित्त रह पाये, उस का कोष वही कहलाये ।
तन में ही जो मन रम पाय, 'अन्नमय कोष' में वह कहाय ।
अन्न से निर्मित तन हो तात, अन्नमय कोष अतः कहलात ।
इस कोष में मन जो रह पाय, दैहिक सुख दुख में उलझाय ।

दो०–अन्न कोष में जो रहे, कर सके नहीं योग ।
माया में वह रम रहे, प्रिय ही लागें भोग ।। 4046

'अन्न कोष' जब दे मन त्याग, 'प्राण कोष' में चित्त तब लाग ।
अन्तर्मुखी तब मन हो पाय, जग से विरक्त वह हो जाय ।
प्राणों में मन ही रम पाय, उन की गति में सदैव समाय" ।
कहा साध "हे जगत विधाता, प्राणों में मन किमि रम पाता ।
कौन उपाय है इस के हेत, फल मिले जिस से अभिप्रेत" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, मन प्राण में रमता आन ।
जभी सुषुम्ना में मन जाय, रम षट्चक्रों में वह पाय ।
प्राणों के वही केन्द्र जान, नाड़ियों के संचालक मान ।

दो०–जानो इस को साध तुम, प्राण कोष है मीत ।
इसमें मन जब रम रहे, होय समाहित चीत" ।। 4047क
कहा साध "हे नाथ जी, शिक्षा मिली अनूप ।
अन्न कोष व प्राण का, जाना मैं स्वरूप ।। 4047ख

अगला कोष नाथ बतलायें, उसका ज्ञान भी अब करायें ।
वह कोष है कहां भगवान, चित्त रुके जाय जिस इस्थान" ।

कहा नाथ "तू प्रश्न जो कीन, उसी बात को लो अब चीन ।
'मनमय कोष' आगे का जान, मन रमता मन के ही स्थान ।
वृत्तियों का जब होत निरोध, मन में होता आत्म बोध ।
इस अवस्था को जन पाय, मनोकोष में स्थित कहलाय ।
जग में उस का ऐसा वास, जल पै कमल का जिमि आवास ।
मन की स्थिति जो यह कथ पाई, इस में परम शांति है भाई ।

दो०-इसी कोष में ठहर कर, हो मन शांत अपार ।
विसरे जग जंजाल को, परविराग को धार" ।। 4048

सुनकर साध ने सुख को मान, कहा "मिला मुझे आत्म ज्ञान ।
अगला कोष जो है भगवान, उसका भी मुझे दीजो ज्ञान" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, राखो स्मरण कोष ये सारे ।
अगला है 'विज्ञानमय कोष', दूर होंय वहां मन के दोष ।
समाधि में जब मन रम पाये, विवेक ख्याति उस में आये ।
होय सत्य का उसे आभास, भ्रांति का होय पूर्ण विनास ।
यह कोष है ज्ञान का भाई, यहां समाहित जब हो जाई ।
इस सृष्टि के रहस बहु भारे, प्रकट भयें उसको वे सारे ।

दो०-ज्ञान कोष को जान लो, ज्ञान सरोवर एक ।
ज्ञान खज़ाना प्रकट हो, रत्न ज्ञान अनेक ।। 4049

हे साधो अब तुम चलि जाओ, प्रातः काल पुनः आ जाओ" ।

दिन छटा (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, आय नाथ को शीश झुकाया ।
कहा नाथ "हे साध बताओ, पांच तत्व के नाम सुनाओ ।
विस्मित हो कर साध उचारा, 'पृथ्वी','जल'यह उस कह डारा ।

'अग्नि' 'वायु' और 'आकाश', कथ दीने उस बिन प्रयास ।
पांच तत्वों के नाम बताय, बैठ रहा वह दृष्टि जमाय ।
नाथ ने तब उसे कथ पाया, "तुम ने है यह ठीक सुनाया ।
अब तुम इन के गुण बतलाओ, स्पष्ट रूप से सब कथ पाओ ।

दो०-जो जो गुण उस तत्व के, कथन करो तुम साध ।
श्रवण करें हम आप से, प्रसंग चले निर्बाध" ।। 4050

साधु बोला "हे महाराज, स्मरण सभी मुझ को है आज ।
पृथ्वी का गुण गंध बखाना, जल का गुण है रस भगवाना ।
वायु का गुण स्पर्श है खास, अग्नि का है गुण प्रकाश ।
आकाश का गुण शब्द बतायें, शास्त्र सकल ऐसा कथ पायें ।
कहा नाथ "तुम ठीक बताया, मेरे चित्त भाव है आया ।
पांच तत्व जिस ईश बनाय, उस के गुण भी हैं कहीं आय" ।
सुन कर नाथ का ऐसा भाव, पड़ा सोच वह सहज स्वभाव ।
कहन लगा वह "नाथ प्यारे, रहस आप ही जानें सारे ।
मैं तो अज्ञ शिष्य अनजान, मिले आप से ही यह ज्ञान" ।

दो०-बोले स्वामी "मैं कहूँ, प्रभु के गुण अनेक ।
'आनन्द' हि गुण जानिये, यह विशेष है एक ।। 405।क
स्मर्ण करे जो ईश को, रहे उसी में लीन ।
सदा रहे आनन्द में, योगी वह प्रवीण ।। 405।ख
विसरे सारे जगत को, नाशवान है जोय ।
जन ऐसा विरला मिले, कोटिन में ही कोय" ।। 405।ग
सुन कर दिव उपदेश को, कहन लगा वह साध ।
"नाथ ! परवैराग्य जो, वह तो कठिन अगाध ।। 405।घ

विचार वा आनन्द की, जो बतलाई रीत ।
सुगम नहीं है पालनी, दुर्बल मेरा चीत ।। 4051ङ

सेवक को हे प्रभो बताओ, रीति सुगमतर आप जताओ ।
ध्यान लगा वैराग्य लूं साध, साधु बना, लूं जीवन साध'' ।
कहा नाथ ''हे साध प्यारे, प्रिय लागे हैं वचन तिहारे ।
निज कठिनाई है प्रकटाई, यह तो उच्चित ही है भाई ।
जो साधन मैं अब कह पाऊँ, सुगम उसे विचार में लाऊँ ।
इसे दृढ़ अभ्यास में लाये, पर वैरागी वह हो जाये'' ।
उत्सुकता से कहा तब साध, ''कथन करें मैं लूं आराध ।
पर वैरागी मैं बन पाऊँ, तव किरपा से योग कमाऊँ'' ।

दो०–कहा नाथ तब साध से, ''सुनो प्यारे मीत ।
'अस्मिता' की हि साधना, सुनिये ला कर चीत ।। 4052

निज रूप जब पुरुष पहचाने, अन्य सभी कुछ नश्वर जाने ।
नश्वर में नहीं मन लगाये, आत्म दर्शन सदा कर पाये ।
जग का लाभ जग की हान, जिस योगी को सदा समान ।
परेशान करे न जिस को दुख, अभिमान लाये न जिस मन सुख ।
आवागामी सब कुछ जाने, आत्मा को हि अनश्वर माने ।
आत्मा को वह लीने चीन, अहर्निश रह कर उस में लीन ।
उसमें ही वह सुख को माने, उस से भिन्न न सुख पहचाने ।
अपने देह से हो न प्यार, दुख दायी जो केवल भार ।

दो०–सहन न तन का भार हो, त्यागन चाहे सोय ।
जन ऐसा विरला मिले, कोटिन में ही कोय'' ।। 4053

साधु ने जब सभी सुन पाया, उसके मन विश्वास न आया ।

ऐसा करना है दुश्वार, देह सुधि आये बारंबार ।
लेश भी तन को कुछ हो पाय, मन तो व्याकुल हो घबराय ।
कहा साध "हे नाथ महान, आप का सेवक यह अनजान ।
देह की सुध न भूलन पाये, यत्न करे तो काम न आये ।
मन एकाग्र जिस विध होय, उपाय बताओ ऐसा कोय ।
सुन कर आप से मैं हे नाथ, ध्यान धरूं और बनूँ सनाथ ।
आप सर्वज्ञ सुजान दयाल, शरणागत को करें निहाल

दो०-ऐसी विधि बतलाइये, लगे सहज ही ध्यान ।
तेरा सेवक नाथ यह, योगी बने पुमान" ।। 4054

बोले नाथ "हे साध सुजान, तव जिज्ञासा एक महान ।
सायं काल जब आओ मीत, सुननी बात तुम सह सप्रीत" ।
उठ पाये तब नाथ दयाल, अपने कक्ष गये तत्काल ।

दिन छटा (सायं)

सायं वेला साध चलि आया, आ स्वामी को शीश झुकाया ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, मैं जानूं जो भाव तिहारे ।
मन के आगे पेश न जाये, प्रभु मिलें तब स्थिर हो पाये ।
प्रभु रूप का ध्यान हो भाई, यह साधन है अति सुखदाई ।
स्मरण करो तुम प्रभु का रूप, जहां आकर्षण परम अनूप ।

दो०-प्रभु का रूप ध्याय कर, भूल जाय संसार ।
जन ऐसा विरला मिले, जिसको प्रभु से प्यार" ।। 4055

साधु ने जभी यह सुन पाया, उस के चित्त न हर्ष समाया ।
कहन लगा "हे दीन दयाल, जान पाये तुम मम मन हाल ।
मैं जानूं यह कठिन न रीत, प्रभु के रूप से करनी प्रीत ।

स्वरूप प्रभु मुझे दिखलाओ, उस में दीक्षित भी कर पाओ" ।
सुन साध की नाथ जिज्ञास, मग्न भया उन का चित्त खास ।
उनके चित्त आया वह काल, प्रथम मिले थे प्रभु जब दयाल ।
कहन लगे "हे साध प्यारे, निज अनुभव कुछ कह दूं न्यारे ।
भटक रहा था जब मैं जग बीच, मिलता न कहीं ज्ञान समीच ।
भटक भटक जब मैं था हारा, मिल पाया तब प्रभु प्यारा ।

दो० – प्रभु मिलन का काल वह, स्मरण भया इस काल ।
देख भया उस रूप को, ध्यान मग्न तत्काल ।। 4056

प्रभु के रूप आकर्षण जोय, बिन प्रयास तन निज सुधि खोय ।
आकर्षण विधि अनूपम जान, तर्क से बाहिर यह विज्ञान" ।
पूछा साध तब "हे भगवान, होगा इस में तो विज्ञान ।
कौन रूप ही ऐसा होवे, मन जिस ओर आकर्षित होवे" ।
बोले स्वामी ला मुख हास, "कह दूं मैं इक बात जो खास ।
प्रभु जब लें जग में अवतार, योग शक्ति वे लें देह धार ।
वही आकर्षण उन तन मीत, सब की होत तब उनसे प्रीत ।
प्रभु के रूप का करके ध्यान, कर लो तुम भी निज कल्याण ।

दो० – राम प्रभु के रूप का, जो भी करता ध्यान ।
अनुभव की यह बात है, उसका हो कल्याण ।। 4057

हे साधो तुम हो सुन पाय, ध्यान संबंधी पांच उपाय ।
कथन करो वे सभी उपाय, जो थे मुझ से तुम सुन पाय" ।
कहा साध "हे दीना नाथ, पांचों कह दूं मैं इक साथ ।
'वितर्क' प्रथम कहा तुम नाथ, कथा 'विचार' उसी के साथ ।
'आनन्द' तीसरा है उपाय, 'अस्मिता' चौथा थे कथ पाय ।
पंचम 'रूप' में मन लगाना, यह सब आप ने था बरवाना ।

आगे का जो हो प्रभु ज्ञान, दीजो मुझ को वह भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, उपाय ये जो देते ध्यान ।
जानो उस को 'संप्रज्ञात', अब कहूं मैं 'असंप्रज्ञात' ।
[1] बिन संस्कार न रह कुछ पाय, ऐसा चित्त जभी हो जाय ।
'असंप्रज्ञात' योग वह जान, भाग्यवान पाये यह ध्यान" ।

दो०-"असंप्रज्ञात किमि मिलत", कही साध तब बात ।
"दीर्घ काल अभ्यास से", कहा नाथ "हे तात ।। 4058

दीर्घ काल जो करे अभ्यास, पर वैराग्य स्थिति में खास ।
'असंप्रज्ञात' की सिद्धि होय, स्थिति ऐसी जन पाता कोय ।
परन्तु एक बात बतलाऊँ, ऐसे भी जन जग में पाऊँ ।
जन्म से ही जो होंवें सिद्ध, शास्त्रों में भी मिलें प्रसिद्ध ।
[2] 'विदेह' जीव जन्म ले पायें, 'प्रकृतिलय' अथवा यहां आयें ।
उन के लिए नही अभ्यास, गहें सिद्धि को बिन प्रयास" ।
सुनी साध ने नाथ की बात, पूछ लिया उस "हे जग त्रात ।
'विदेह' जीव कौन भगवान, 'प्रकृतिलय' हैं कौन लूं जान ।
जन्म जात जो होवें सिद्ध, और जो शास्त्रों में प्रसिद्ध" ।

दो०-नाथ कही तब बात यह, "क्या करो गे जान ।
देव योनि के भेद हैं, रचे सभी भगवान ।।4059क

---

[1] विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः (योग दर्शन 1.18)
अर्थ - सर्ववृत्तियों के निरोध का कारण जो परवैराग्य है उस के पुनः 2 अनुष्ठान रूप अभ्यास से जो संस्कार शेष रह जाते हैं, वह 'असंप्रज्ञात' योग है ।

[2] भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् (योग दर्शन 1.19)
अर्थ - असंप्रज्ञात योग के लिए विदेह और प्रकृतिलय (जीवों) का जन्म (भव) आधार (प्रत्यय) होता है ।

प्रभु इच्छा से जन्म लें, मानव तन लें धार ।
कर के जग का कर्म वे, त्यागें फिर संसार ।। 4059ख

चिरञ्जीव अब समय विहाया, सायं वेला चल के आया ।
प्रातः काल जभी मिल पायें, अग्रिम तभी प्रसंग चलायें'' ।

दिन सातवां (प्रातः)

आया साध भोर हो पाई, सुन्दरता नभथल में छाई ।
विराजे स्वामी भी तत्काल, चर्चा चाली तब उस काल ।
बोले स्वामी ''साध प्यारे, खोले प्रभु जी योग द्वारे ।
ऋषियों की हि योग प्रणाली, शुद्ध सनातन जग वह चाली ।
यत्न करें जन योग कमायें, मारग मुक्ति का अपनायें ।
[1] सुनो योग के पांच आधार, यही योग का मुख्य आचार ।

दो० – योग के आधार अब, सुनिये ला कर चित्त ।
इन को न कभी भूलना, करिये साधन नित्त ।। 4060

'श्रद्धा','वीर्य','स्मृति' अपनाओ, चौथा 'समाधि' धार दिखाओ ।
'प्रज्ञा' पंचम है कथ पाई, सनातन रीति चलि यह आई ।
इन पांचों को जो अपनाये, समय पाय योगी हो जाये'' ।
बोला साध ''हे सद्गुरु देव, श्रद्धा बढ़े मम रह तव सेव ।
स्मृति आदि जो कहे इस साथ, उन का क्या है गुण मम नाथ ।
यह बात जभी होय स्पष्ट, मेरी भ्रांति तभी होय नष्ट'' ।
कहा नाथ ''सुन लो मम भाई, भ्रांति तेरी नष्ट हो जाई ।

---

[1] श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् । (योग दर्शन I.20)
अर्थ – दूसरे योगी जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं हैं उन को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक 'असंप्रज्ञात' समाधि प्राप्त होती है ।

श्रद्धा का तो गुण तुम जानो, श्रद्धा बिन कुछ होत न मानो ।
श्रद्धा स्थिर उस की ही होय, दृढ़ता से जो उसे संजोय ।
दृढ़ता ही गुण 'वीर्य' कहाये, वीर पुरुष ही दृढ़ रह पाये ।

दो०-वीर पुरुष का चिह्न यह, भूले न निज लक्ष्य ।
'स्मरण' शक्ति हो मन्द यदि, भूल जात जन लक्ष्य ।। 406।क
श्रद्धा हेतु इसी लिए, कथन किया है मीत ।
परम आवश्यक है स्मृति, तभी लक्ष्य से प्रीत" ।। 406।ख

कहा साध "हे नाथ महान, आप से पाया है मैं ज्ञान ।
श्रद्धा की परिभाषा जानी, स्थिरता उसकी ही पहचानी ।
'समाधि' का श्रद्धा में स्थान, इस का भी प्रभो दीजो ज्ञान" ।
बोले नाथ जगत सुखदायी, "यह तो स्पष्ट बात है भाई ।
एकाग्रवृत्ति से ही साध, स्मृति टिक जाती निर्बाध ।
'समाधि','स्मृति' से उपजाये, समाधि से श्रद्धा बढ़ पाये" ।
कहा साध ने "नाथ प्यारे, संशय दूर भये अब सारे।
फिर भी बात एक लूं जान, 'प्रज्ञा' से क्या हो भगवान ।

दो०-'प्रज्ञा' का हे नाथ जी, 'श्रद्धा' से क्या मेल ।
अजब बात है दीखती, यह विलक्षण खेल" ।। 4062

हंसे नाथ सुन कर यह बात, और कहा तुझे ज्ञात न तात ।
'प्रज्ञा' तो आधार है मीत, जिस पर खड़ी श्रद्धा की भीत ।
'प्रज्ञा' में जब संशय आये, श्रद्धा लेश न टिक भी पाये" ।
कहा साध "मैं लीने जान, योग के आधार पहचान।
'श्रद्धा', 'वीर्य','स्मृति' हे नाथ, 'समाधि','प्रज्ञा' इनके साथ ।
राखूं श्रद्धा को संजोय, साधन सिद्ध जिस विध मम होय" ।
कहा नाथ "तुम लीन पहचान, किमि हो योग का पूर्ण ज्ञान ।

पर इक बात विशेष बताऊँ, श्रद्धा का मैं वेग जताऊँ ।

दो० – वेग श्रद्धा का सुनो, यदि मंद वह होय ।
सिद्धि में विलंभ होय, संशय लेश न कोय ।। 4063

[1] वेगवती यदि श्रद्धा होय, 'तीव्र संवेग' कहावे सोय ।
सिद्धि शीघ्र इस से हो भाई, देर न लागे इस में राई ।
एक बात पर और बताऊँ, तीव्र में भी भेद मैं पाऊँ ।
[2] 'मृदु','मध्य','अधिमात्र' पहचान, प्रकार ये तीव्रता के जान" ।
सुन कर नाथ की ऐसी बात, बोला साध "हे जगत त्रात ।
बात न मेरे चित्त ठहराव, तीन भेदों का क्या है भाव" ।
कहा नाथ "मैं इमि समझाऊं, दे दृष्टांत तुझे बताऊँ ।
स्पष्ट करूं इमि इसे मैं साध, यह रहस्य है गूढ़ अगाध ।

दो० – श्रद्धा के इस भेद को, समझे जन सुजान ।
योग हि जिस का ध्येय हो, विरला वह पुमान ।। 4064

श्रद्धा को तू शक्ति पहचान, मन की ऊर्जा उस को जान ।
मन ही जीव का वाहन होय, जीव जाता जहां जाता सोय ।
सायं काल जभी चलि आओ, इसी बात को फिर सुन पाओ" ।

दिन सातवां (सायं)

सायं काल साध चलि आया, स्वामी वही प्रसंग चलाया।
कहा नाथ "तुम को बतलाऊं, दे दृष्टांत तुझे समझाऊँ ।

---

[1] तीव्रसंवेगानामासन्नः (योग दर्शन I.21)
अर्थ – तीव्र संवेग श्रद्धा वाले योगियों को समाधि लाभ शीघ्र होता है ।

2 मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः । (योग दर्शन I.22)

मोटर का जो ईंधन भाई, मृदुल कोटि का ही कहलाई ।
वायुयान का ईंधन जोय, मध्यम कोटि का वह होय ।
मोटर पृथ्वी पर रह पाय, यान आकाशी उड़ के जाय ।
श्रद्धा 'मृदु' इमि जग में ले आय, 'मध्यम' उच्च लोक दे पाय ।
यह समझो सिद्धांत अपेल, नियम अटल यह जग इक खेल ।

दो०- श्रद्धा के अनुरूप ही, होय जीव की गत ।
यह जो मत हमने कथा, यही ऋषियन का मत" ।। 4065

सुन नाथ की स्पष्ट यह बात, कहा साध "हे जग के त्रात ।
आप सर्वज्ञ सुजान महान, बात स्पष्ट भयी भगवान ।
'मृदु','मध्य','श्रद्धा' समझाई, 'अधिमात्र' तो नही कथ पाई ।
मेरे मन में है जिज्ञास, समझपाय वह आप से दास" ।
कहा नाथ "हे प्रिय मम तात, मैं पूछूं तुम से इक बात।
वायुयान आकाश में जाय, क्या इस से ऊपर भी कुछ जाय" ।
सुन प्रश्न यह नाथ का साध, पड़ा तभी वह सोच अगाध।
उस की देख नाथ लाचारी, मुख से तब उन गिरा उचारी।

दो०- "श्रवण करो मम बात अब, हे जिज्ञासु साध ।
[1]'रॉकट' को तुम देखते, लांघे गगन अगाध ।। 4066क
उस का ईंधन साध जी, उत्तामतर कहलाय ।
श्रद्धा के 'अधिमात्र' से, जीव मोक्ष को पाय" ।। 4066ख

सुनी नाथ की जब यह वाणी, कहा साध "हे जग कल्याणी ।
ऐसा स्पष्ट ज्ञान हे नाथ, कर ग्रहण मैं भया सनाथ ।
'अधिमात्र' यह श्रद्धा देव, कैसे होये न जानूँ भेव ।

[1] Rocket

यह तो कठिन कठिनतर काम, अन्य उपाय कहो सुख धाम ।
अल्प बुद्धि हूँ आप का दास, और बताइये साधन खास" ।
कहा स्वामी "हे साधु भाई, एक उपाय सुनो चित्त लाई ।
जिस का कर के दृढ़ अभ्यास, जन पाता है समाधि खास" ।
कहा साध "मुझ को बतलायें, ऐसा योग अवश्य सिखायें ।

दो०–ध्यान लगे जिस रीति से, वह सीखूं मैं नाथ ।
योग करूँ मैं सद्गुरो, बैठ आप के साथ" ।। 4067

[1]कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, ईश्वर का प्रणिधान सुझाऊँ ।
इस साधन से सिद्ध समाधि, हरती यह है जग की व्याधि ।
इस साधन को यदि कर पाओ, सहज स्वभाव योग कमाओ" ।
पूछा साध "हे दीनानाथ, कहूं आप से जोड़ के हाथ ।
प्रथम बात यह समझायें, ईश्वर किस को हम कह पायें ।
और जो कथन किया प्रणिधान, किस विध होता वह भगवान ।
नाथ मुझे यह सब समझायें, मेरी नौका पार लगायें ।
भव सागर के भंवर पड़ा हूं, शरण आप की अड़ा खड़ा हूँ ।

दो०–शरण पड़े इस जीव को, अब करो स्वीकार ।
ईश्वर के प्रणिधान से, हो मेरा उद्धार" ।। 4068

कहा नाथ "हे साध प्यारे, दोनों प्रश्न जो हैं तिहारे ।
उन का उत्तर दूं मैं प्यारे, क्रमशः कथन करूँगा सारे ।
इस घट में जो ज्योति सुजान, उस का नाम पुरुष लो जान ।
देह तो इक पुरी है भाई, जीव शयन करे वहां आई ।

---

[1] ईश्वरप्रणिधानाद्वा (योग दर्शन 1.23)
अर्थ –अथवा ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है ।

[1] इस कारण वह पुरुष कहाय, शास्त्र उसे इस विध कथ पाय ।
इस पुरुष का स्वरूप लो जान, अनेक व्याधिन से परेशान ।
[2] इस को क्लेश पांच हैं लागे, निज कर्मों के फल में पागे ।
संस्कारों के बंधन जकड़ा, चौरासी ने इस को पकड़ा ।
[3] विशेष पुरुष जो इन से न्यारा, वह जान तू ईश्वर प्यारा ।

दो० – [4] ईश्वर का गुण और भी, लो जान तू मीत ।
वह पुरुष सर्वज्ञ है, ज्ञानी सर्वातीत ।। 4069क
करना वर्णन ईश का, है परम दुश्वार ।
प्रात फिर जब आओ तुम, तब फिर करें विचार" ।। 4069ख

दिन आठवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, सद्गुरु को उस शीश झुकाया ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, ईश्वर का जो है प्रणिधान ।
उस से सहज समाधी लागे, ईश्वर के जो जन अनुरागे ।
ईश्वर के गुण मैं बतलाये, सायं जो थे तुम सुन पाये ।
[5] और भी उस का गुण बताऊँ, आदि अन्त न कहीं भी पाऊँ ।

---

[1] पुरुष – देह रूपी पुरी में शयन करने वाला जीव ।

[2] पांच क्लेश – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ।

[3] क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । (योग दर्शन I .24)
अर्थ – क्लेश, कर्मों के फल और वासनाओं (संस्कारों) से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों से विशेष (विभिन्न) पुरुष ईश्वर है ।

[4] तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् (योग दर्शन I .25)
अर्थ – उस पूर्वोक्त ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अतिशय है ।

[5] पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् (योग दर्शन I .26)
अर्थ – वह ईश्वर पूर्व उत्पन्न हुए ब्रह्मादिकों का भी गुरु है क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न (परिमित) नहीं है ।

गुरुओं का भी गुरु वह भाई, आदि काल से हि चला आई" ।
सुन कर नाथ का यह उपदेश, साध कहा "हे गुरु सर्वेश ।
ईश्वर के गुण लीन मैं जान, उस का नाम क्या भगवान ।

दो०-ईश्वर का क्या नाम है, हे मेरे भगवान ।
बिन नाम नहीं हो सके, ईश्वर का प्रणिधान" ।। 4070

सुन नाथ जी साध की वाणी, कहने लगे " हे साध ज्ञानी ।
इक रहस्य की बात बताऊँ, ईश्वर का किमि नाम सुनाऊँ ।
मात पिता हि नाम रख पायें, अथवा गुरु से वे रखवायें ।
जिस का पिता न माता होई, गुरुओं का भी गुरु है जोई ।
कौन राखे गा उस का नाम, जानो अनामी वह सुख धाम ।
[1] कवियों ने तब यह कथ पाया, वाचक उस का 'प्रणव' सुनाया" ।
साध ने पूछी तब यह बात, "क्या 'प्रणव' का अर्थ जग त्रात ।
इस को स्पष्ट करें भगवान, करें ईश का हम प्रणिधान ।

दो०-ईश्वर का प्रणिधान तब, हम करें भगवान ।
आप की कृपा पाय कर, मिले समाधि दान" ।। 4071

कहा नाथ "हे साध सुजान, व्यापक शब्द प्रणव को जान ।
[2] 'नू' धातु से है इस का रुप, स्तुति है जिस का अर्थ अनूप ।
स्तुति यहां मुख्य, नाम है गौन, जाने नाम ईश का कौन ।
किसी नाम का लेय आधार, स्मरण करे जन जब करतार ।
एकाग्र वृत्ति जब हो पाये, समाधि को तब जन पा जाये" ।

[1] तस्य वाचकः प्रणवः (योग दर्शन १.
अर्थ -उस ईश्वर का वाचक शब्द 'प्रणव' है ।

[2] प्रणव (प्र + नू + अप्) प्रकर्षेण नूयते अनेन ।
अर्थ - जिससे बहुत स्तुति की जाती है ।

कहा साध "हे सद्गुरु देव, जाना मैंने नाम का भेव ।
गुरुमुख से जो नाम सुन पाऊँ, उसी नाम को मैं जप पाऊँ ।
कर कृपा मुझे दें आदेश, कौन नाम मैं जपूँ हमेश ।

दो०-नाम प्रभु का मैं जपूं, जैसा हो आदेश ।
ध्यान मग्न तब होय कर, भजूं ईश हमेश" ।। 4072

नाथ कहा "हे साध प्यारे, प्रभु के नाम न जानें सारे ।
मैं तुम्हें इक नाम बताऊँ, ऋषियों का ही कथन सुनाऊँ ।
नाम प्रभु का 'ओं' है प्यारा, सब नामों से जो है न्यारा ।
[1] उसी नाम को तुम जप पाओ, और प्रभु में ध्यान लगाओ ।
इस विध ध्यान का फल महान, जो करता सो लेता जान" ।
पूछा साध "हे सद्गुरु देव, इस फल का भी जानूँ भेव" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, इस के फल हैं दो जताऊँ ।
[2] एक फल इसका यही जान, दर्शन आत्मा का पहचान ।

दो०-दूजा फल तुम जान लो, हे मम साध सुजान ।
विघ्न होंय जो योग में, उन से मिलता त्राण" ।। 4073

कहा साध ने "हे महाराज, कौन विघ्न वे जानूं आज ।
जिन से जन त्राण पा जाय, ईश्वर में जब ध्यान लगाय" ।
कहा नाथ "तुम सुन लो प्यारे, इस मार्ग में विघ्न बहु सारे ।
चित्त को कर के जो विक्षिप्त, अन्यत्र करते उस को लिप्त ।

---

[1] तज्जपस्तदर्थभावनम् (योग दर्शन ।.
अर्थ -उस 'ओं' शब्द का जप और उसीके अर्थ भूत ईश्वर का ध्यान करना (पुनः पुनः चिन्तन करना) चाहिए

[2] ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च । (योग दर्शन ।.
अर्थ - इससे प्रत्येक चेतना का ज्ञान (आत्मा का साक्षात्कार) होता है और अन्तरायों (विघ्नों) का भी अभाव होता है ।

उन में कुछ के नाम बताऊँ, स्मरण करो तो मैं सुन पाऊँ ।
कहा साध "हे सुख के धाम, सुनूं ध्यान से मैं वे नाम ।
जैसा आप का हो आदेश, वही करुंगा मैं सर्वेश" ।
[1] बोले नाथ "साधक प्यारे, सुनो नाम विघ्नों के सारे ।

दो०–चंचल कर के चित्त को, डाल योग में बाध ।
'अन्तराय' का नाम धर, करें दुखी वे साध ।। 4074

सबन के तुम नाम सुन पाओ, सायं को जब चल कर आओ" ।

दिन आठवां (सायं)

सायं भयी साध चलि आया, स्वामी को आ शीश झुकाया ।
और कहा "हे नाथ महान, नाम आप से लूं मैं जान ।
योग में जो कथे अन्तराय, वर्णन आप ने भी कर पाय ।
सुनकर आप से मैं सुखधाम, स्मरण करूंगा उन के नाम ।
कहा नाथ तुम "सुन लो नाम, विघ्न 'व्याधि' बिगाड़े काम ।
'स्त्यान' दूसरा सुन लो भाई, 'संशय' तीजा विघ्न कहाई ।
'प्रमाद' चौथा लेवो जान, 'आलस्य' सब विघ्नों की खान ।
'अविरति' से भी बिगड़ें काम, 'भ्रांति' से गहें मारग वाम।
करे यत्न पर लक्ष्य न पाये, 'अलब्ध भूमि' हि विघ्न कहाये ।
चित्त स्थिर न जभी हो पाये, 'अनवस्थितत्व' वही कहाये।

दो०–सभी विघ्न जो योग के, बाधक बनें हमेश ।
नाम जाप जब जन करे, बाधक होंय न लेश" ।। 4075

---

[1] व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः (योग दर्शन १.

अर्थ –व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व – ये चित्त के (नौ) विक्षेप (योग के विघ्न) हैं ।

कहा साध "सुन कर तव वाणी, प्रभु नाम की महिम पहचानी ।
होंय विघ्न जो उस से दूर, करुं स्मरण मैं नाम ज़रुर ।
'व्याधि' आदि जो विघ्न अपार, जानन चाहूँ उन का सार ।
'व्याधि' का क्या अर्थ है नाथ, 'स्त्यान' का समझूं उसके साथ" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, इन के भाव तुझे समझाऊँ ।
आधि व्याधि दो दुख महान, मन के रोग वा तन के जान ।
जो जन इन से पीड़ित होय, योग में लग सके नहीं सोय ।
इन का जो प्रकोप हो भाई, दैव कृपा से सकल नसाई ।

दो०-दैव कृपा जब होत है, नासे सकल व्याध ।
योगी जन सिमरन करे, सदा ईश को साध ।।4076क
भारी भारी तन लगे, मन भी भारी होय ।
मन करे नहीं काम को, रहे बैठ जन सोय ।।4076ख
'स्त्यान' नाम इस दोष का, नहीं आधि न व्याध ।
जन अचेत रहता पड़ा, वैसे ही हे साध ।।4076ग

'संशय' की अब कह दूं बात, शक में उलझे मन जब तात ।
कर सके नहीं निर्णय कोय, संशय फंसा जन वह होय ।
दृढतम जो गुरु आज्ञा ग्राहे, उस के चित न संशय आये ।
मनमुखी जभी जन हो जाये, अथवा बहुसंगी हो पाये ।
संशय युक्त तभी चित्त होय, योग में लग सके नहीं सोय ।
'प्रमाद' दोष का करूं बखान, इसको अल्प दोष मत मान ।
कर्तव्य परायण जो न होय, पुरुष प्रमादी जानो सोय" ।
सुन कर नाथ का सब उपदेश, बोला साध "हे मम हृदयेश ।
'व्याधि','स्त्यान','संशय' का भेव, 'प्रमाद' को भी कथा है देव ।

दो०–'आलस्य' का जो दोष है, उसका करो बखान ।
मुझ में भी वह दोष है, उस का होय निदान'' ।। 4077

कहा नाथ '' हे साध सुबोध, इस का भी मैं दे रहा बोध ।
हो पुरुष निरुत्साही जोय, आलसी पुरुष कहावे सोय ।
सामर्थ्यवान हो कर भाई, रुचि न लेता काम में राई ।
ऐसे पुरुष से योग न होय, आलस योग में बाधक होय ।
'अविरति' की अब सुन लो बात, विषयों से बहु लग्न जो तात ।
योग में बाधक बहु वह होय, रहे विरक्त जो योगी सोय'' ।
सुन कर साध बोला ''हे देव, 'आलस्य' वा 'अविरति' का भेव ।
मैं लीना निज दोष पहचान, तेरी दया से हे भगवान ।

दो०–रह कर तेरे चरण में, मैं ग्राहूं गुण देव ।
श्रवण करूं उपदेश तव, जानूं योग के भेव ।। 4078

'भ्रांति' क्या हो हे भगवान, आप से सुन लूं यह विज्ञान'' ।
नाथ बोले ''हे साध सुजान, 'भ्रांति' बाधक अतीव महान ।
झूठी समझ भ्रांति कहाय, सत्य बात न ध्यान में आय ।
चले न सत्य के मग पर जोय, योग सके नहीं कर वह सोय'' ।
कहा साध '' मैं समझ है लीन, जो अर्थ भ्रांति का कथ दीन ।
सत्य सभी मैं तुम से जानूँ, भाग्यवान मैं निज को मानूँ ।
करुं उसी पर मैं विश्वास, भ्रांति आये न हमरे पास ।
अगली बात मुझे बतलायें, 'अलब्धभूमि' किसे कह पायें ।

दो०–अर्थ 'अलब्धभूमि' जोय, मुझे बतायें नाथ ।
निवारण उस का हो किमि, कथन करें इस साथ'' ।। 4079

कहा नाथ ''तुम कल आ जाना, इस विषय को समझ के जाना'' ।

दिन नवमां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, स्वामी जी ने तब बतलाया।
"हे साधो यह निश्चित बात, योग का लक्ष्य मोक्ष है तात ।
ऐसे लक्ष्य को पाने हेत, लांबी यात्रा है अभिप्रेत ।
यात्रा में कई आयें स्थान, भूमियां उन का है अभिधान ।
मत तुम भूलो बात यह मीत, भूमियां चित्त की शुद्धि रीत ।
पूर्ण मन जब शुद्ध हो पाय, निरोध अवस्था को अपनाय ।
सात भूमियों को कर के पार, पहुंचे जीव मोक्ष के द्वार ।

दो०-*सात भूमियां पार कर, मिले जीव को मोक्ष ।
ऐसा जो न कर सकत, प्राप्त होय न मोक्ष" ॥ 4080

पूछा साध, "हे नाथ महान, उन भूमियों का क्या अभिधान ।
उन को जान के हे भगवान, योग के जानूं मैं 'सोपान"।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, नाम श्रवण करो तुम सारे ।
सके जो भूमिन को कर पार, पाये मोक्ष का लाभ अपार ।
प्रथम भूमि तुम लो यह जान, 'शुभेच्छा' उस का है अभिधान ।
दूसरी का 'विचारणा' नाम, मिले चित्त को वहां विश्राम ।
'तनुमानसी' तीसरी भाई, रहे न मन में इच्छा राई ।
'सत्वापत्ति' चतुर्थ लो जान, सत्य का जहां पर पूर्ण भान ।

दो०-चार ये भूमियां मैं कहीं, समझो साध सुजान ।
प्रांप्त यदि नहीं ये भयें, योग सफल न जान" ॥ 4081

कहा साध "हे सद्गुरु प्यारे, मेरे तुम बहु भ्रम निवारे ।

*योग की सात भूमियां: – 1. शुभेच्छा 2. विचारणा 3. तनुमानसी 4. सत्वापत्ति 5. असंसक्ति 6. पदार्थाभावना 7. तुर्यगा ।

भूमिन का यह दे कर ज्ञान, हर लीना है मम अज्ञान ।
पूर्ण न जब तक मन शुद्ध होय, योग में सफलता न जन गोय ।
अगली भूमियां क्या भगवान, उन का भी मुझे दे दो ज्ञान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, सत्य बात तू ली पहचान ।
मन न शुद्ध जब तक हो जाये, सफल मनोर्थ जन न हो पाये ।
'असंसक्ति' अगली भूमि साध, संग रहित जहां मन निर्बाध ।
'संसक्ति' जन को जग में लाय, असंसक्ति ले मोक्ष में जाय ।

दो० – जन 'असंसक्ति' में रहे, पंचम भूमि पाय ।
साधन उसके सिद्ध हों, और मोक्ष में जाय ।। 4082

'पदार्थाभावना' छटी जान, भूमियों में लो उत्तम मान ।
सकल पदार्थ जगत के जोय, लगें योगी को शून्य ही सोय ।
आत्माराम रमे आत्म मांझ, सकल दिवस वा प्रातः सांझ ।
सातवीं भूमि लो पहचान, 'तुर्यगा' जिसका है अभिधान ।
[1] तुर्या अवस्था में ले जाय, इस कारण यह नाम धराय ।
सातों भूमियां मैं कथ दीन, पाया तू है ज्ञान नवीन ।
ये भूमियां जब न मिल पायें, मुमुक्षु के मग बाधा आयें ।
इक विघ्न है अभी रह पाया, 'अनवस्थि तत्व' जो कहलाया ।

दो० – 'अनवस्थितत्व' विघ्न जो, विघ्नों का सरदार ।
स्थिरता के बिन योग का, और न को आधार" ।। 4083

कहा साध "हे सद्गुरु देव, आप से मिले गुप्त बहु भेव ।
सप्त भूमि जो है कथ पायी, मुक्ति की मुझे राह दिखाईं ।
उस का पुनः कथन कर पायें, गूढ भाव मुझको समझायें" ।
कहा नाथ "तुम ठीक बखाना, भूमिन का तुम महत्व जाना ।

[1] तुर्या अवस्था – चतुर्थ अर्थात समाधि अवस्था ।

उन के नाम पुनः कथ पाओ, यदि स्मरण हो मुझे सुनाओ'' ।
कहा साध ''सुन लो भगवान, भूमिन सकल के जो अभिधान ।
कर कृपा था आप बतलाया, इक 'शुभेच्छा' नाम जो आया ।
'विचारणा' भूमि दूजी होय, 'तनुमानसी' उस संग हि सोय ।
'सत्वापत्ति' 'असंसक्ति' दोय, 'पदार्थाभावना' तुर्यगा होय ।

दो०-[1] सातों के जो नाम हैं, स्मरण भये हे देव ।
स्पष्ट करो हे नाथ जी, पुनः भी उन का भेव'' ।। 4084

कहा नाथ ''हे साध सुजान, सायं आ कर लीना जान'' ।

दिन नवमां (सायं)

आज्ञा पाय साध चलि पाया, पुनः लौट वह सायं आया ।
स्वामी जी को कर प्रणाम, पुनः प्रश्न कीना उस शाम ।
''नाथ मेरी यही जिज्ञास, 'भूमिन' समझन की मम आस'' ।
कहा नाथ ''हे साध सुजान, मुक्ति के सोपान ये मान ।
'शुभेच्छा' भूमि जो कहलाई, विशेष महत्त्व इसका भाई ।
जब तक भाव न शुभ हों मीत, योग मार्ग नहीं हो प्रतीत ।
शुभ भाव शुभ विचार दे पाय, 'विचारणा' भूमि तब ही आय ।

दो०-जानो दो सोपान ये, मुख्य योग आधार ।
इन बिन जन न चढ़ सके, मोक्ष के उच्च द्वार ।।4085क
मन की इच्छा जान लो, इक अनन्त समुदाय ।
उन पर अंकुश डालना, 'तनु मानसी' कहाय ।।4085ख

[1] भूमियों का उल्लेख योग दर्शन के निम्नलिखित सूत्रों में भी आगे चल कर मिलेगा ।
सूत्र II.27– तस्य सप्तधा प्रांतभूमिः प्रज्ञा ।
सूत्र III.6 – तस्य भूमिषु विनियोगः ।

असत जगत में मन रमे, सत्य का न हो ज्ञान ।
मन जब इच्छा त्याग दे, होय सत्य का भान ।। 4085ग
'सत्वापत्ति' भूमि यह, यत्न से रहना स्थिर ।
अति कठिन यहां ठहरना, इसका तल अस्थिर ।। 4085घ
सर्वभाव से सत्य पर, जो जन रहत जरूर ।
'सत्वापत्ति' में बसत, मोक्ष न उस को दूर ।। 4085ङ
आगे की जो भूमि हैं, है 'असंसक्ति' नाम ।
उस पर वह ही चढ़ सके, जग से जो उपराम ।। 4085च
उदासीन जग से सदा, जल में कमल समान ।
रहता है वह जगत में, जग का पर न भान ।। 4085छ
छटवीं भूमी अब कहें, भूमियों में प्रसिद्ध ।
भूमि 'पदार्थाभावना', पालें योगी सिद्ध ।। 4085ज
द्रव्य सभी जो जगत के, पदार्थ जिन का नाम ।
लागें उस को धूल सब, पदार्थों से न काम ।। 4085झ
'भूमि पदार्थाभावना', मान्य योग में खास ।
योगी सब कुछ छोड़कर, रखता मोक्ष की आस ।। 4085ञ
जो योगी ऐसा भये, पाता मोक्ष द्वार ।
'तुर्यगा' भूमि में रमे, लौटत न संसार ।। 4085ट
जन वह जीवन मुक्त ही, 'तुर्यग' उस की टेक ।
इस भूमि में पहुंचता, कोटिन में को एक ।। 4085ठ
तुम ने पूछा साध था, भूमिन का विस्तार ।
कथ दीना संक्षेप से, सब भूमिन का सार ।। 4085ड

कठिन सभी की साधना, करना यत्न अपार ।
मंझधार से लांघ कर, छोड़ो यह संसार'' ।। 4085ढ

सुन नाथ का सत्य उपदेश, बोला साध "हे मम हृदयेश ।
जो ज्ञान मैं इस क्षण पाया, था सुनने में कभी न आया ।
आगे का उपदेश हे नाथ, सुनूं आप से बनूं सनाथ ।
आज्ञा हो यदि हे जगत्रात, इसी प्रसंग में पूछूं बात ।
योगी को जब विघ्न सतावे, और सफलता नज़र न आवे ।
उस के चित्त का क्या हो हाल, यह बतलावें हे गुरु दयाल'' ।
सुन कर साध की यह जिज्ञास, बोले नाथ ला मुख पर हास ।
"परिप्रश्न तेरा हे तात, चाहे जानन गूढ ही बात ।

दो० – प्रश्न साध जो तुम किया, उत्तर हम दे पाय ।
योगी अपने चित्त की, क्यों किसे बतलाय ।। 4086क
फिर भी मैं अनुमान से, तुझे कहूं निज भाव ।
असफलता का साध जी, सब पर हो प्रभाव ।। 4086ख
अन्तरायन संग जुड़े, मन के कुछ मालिन्य ।
रह अछूता ही सकत, विरला ही जन धन्य ।। 4086ग

साधक को जब विघ्न सतावे, और सफलता नज़र न आवे ।
उस के मन का बिगड़े हाल, मनोमालिन्य होय उस काल ।
[1] अथवा यह भी होता मीत, देह में कंपन हो प्रतीत ।
या श्वास प्रश्वास अवरोध, ऐसा मेरे चित्त में बोध'' ।
कहा साध "क्या होय उपाय, योग साधन में दुख न आय ।

[1] दुखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः (योग दर्शन I.
अर्थ – दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास – प्रश्वास – ये विक्षेप के साथ होने वाले हैं ।

क्या सब योगी दुख को पायें, अथवा कुछ सुख से कर पायें" ।
नाथ कहा "हे साध प्यारे, लगते प्यारे प्रश्न तिहारे ।
तेरा प्रश्न कठिन यह भाई, उत्तर सुनना ध्यान लगाई ।

दो०–सुन साध तुम ध्यान से, श्रद्धा सहित विचार ।
योगी को न बांध सकें, 'सहभुवः' ये चार ।। 4087क
* एक तत्व जो ईश है, सिमर करे हर काल ।
उसकी किरपा जब भये, अभय योगी त्रिकाल ।। 4087ख

विशेष बात पर लो यह जान, सिमरन ईश का न आसान ।
निर्मल चित्त जब तक न होय, सिमरन कर न सके जन कोय" ।
कहा साध "हे प्राणाधार, यह तो आप का ठीक विचार ।
चित्त को निर्मल करने हेत, कर्म कौन प्रभो अभिप्रेत" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, दूं मैं इसका भी तुझे ज्ञान ।
गुण चार जो चित्त में आयें, सहज ही मन की शुद्धि पायें" ।
कहा साध " हे गुरु महाराज, वे गुण आप से जानूं आज ।
आप की कृपा हो यदि देव, गुण ग्राहूं मैं कर तव सेव ।

दो०–आप की कृपा जब भये, को गुण जन न पाय ।
पाप सभी धुल जात हैं, चरण शरण में आय ।। 4088क
चार गुण सभी कौन से, आप बताओ देव ।
मेरे मन जिज्ञास है, जान सकूं मैं भेव" ।। 4088ख

नाथ कहा "तुम को बतलाऊँ, मानसिक चार गुण समझाऊँ ।

---

* तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः (योग दर्शन १.३२)
अर्थ –उनको दूर करने के लिए एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए ।

[1] मैत्री, करुणा, मुदिता जान, चौथा उपेक्षा को तुम मान ।
इन गुणों का कर अभ्यास, मन को शुद्ध करें जन खास" ।
कहा साध "मम मन यह आय, इन का अभ्यास किमि हो पाय" ।
कहा नाथ "हे साध विचार, सचमुच इसमें है बहु सार ।
इन का जिमि हो सके अभ्यास, विधि मैं तुझे बताऊँ खास ।
जन सुखी जब कहीं भी देखो, निज उसे तुम मित्र ही पेखो ।
भाव अन्य न चित्त में लाओ, उस को निरख सुखी हो पाओ ।
मैत्री गुण यह गुण बहुकारी, हरे यह मन की व्याधि भारी ।

दो०-चित्त की व्याधि हरत है, मैत्री गुण लो जान ।
मित्र दृष्टि से देखता, योगी सबन सुजान ॥ 4089

दुखी जन जग बहु रह पावें, जब कभी संपर्क में आयें ।
उन पर दया जोय कर पाय, मन उस का तब शुद्ध हो जाय ।
करुणामयी जो मन की धार, शीतल निर्मल सम गंगधार ।
अन्तःकरण को करे पवित्त, भये जन योगी इसी निमित्त ।
पुण्यकर्म जन होता देखो, उसे प्रसन्न वदन हो पेखो ।
हर्ष प्रफुल्लित मन भी होय, चित्त तब निर्मलता को गोय ।
उपेक्षा की अब कह दूं बात, ध्यान से सुनना इस को तात ।
पाप की जग में भी भरमार, उलझ उस में मन होत खवार ।
उस से उदासीन रह पायें, मन को शांत तभी रख पायें ।

दो०-उदासीन जो रहत है, पाप प्रति हे मीत ।
उपेक्षा वृत्ति धार कर, निर्मल उस का चीत ॥ 4090क

---

[1] मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् (योग दर्शन I. 33)
अर्थ -सुखी, दुखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में (यथाक्रम) मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है ।

चार गुणों को धार इमि, होता निर्मल चीत ।
निर्मल मन से ईश का, सुगम भजन हो मीत ।। 4090ख

हे साध अब तुम चलि जाओ, प्रातः काल लौट के आओ ।
आगे का तब देंगे ज्ञान, जो चाहो तुम पूछना आन" ।

दिन दसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, आ कर नाथ को शीश झुकाया ।
और कहा "हे गुरु भगवान, मिला आप से सुन्दर ज्ञान ।
चित्त शुद्ध से ईश ध्याना, सुना आप से मैं भगवाना ।
पर मन शुद्धि की क्रिया नाथ, लागे सुगम न जीव के हाथ ।
यह तो जन्म जन्म की घाल, कह दो सुगम रीत कुछ दयाल ।
जिस से मन का करूं निरोध, आप से पा कर मैं वह बोध" ।
कहा नाथ "अब तुम सुन पाना, संग प्राण ध्यान लगाना ।

दो० – [1] प्राणों संग ध्यान की, सुगम रीत इक साध ।
प्रभु सिखलाई है मुझे, वह तुम लो आराध ।। 4091

श्वासों संग मन्त्र जप पाओ, और उसी में ध्यान लगाओ ।
'ओं' मन्त्र का तुम करना जाप, विधि बतलाता हूं तुझे आप ।
श्वास लो तो 'ओ' जप पाओ, जभी निकले तब 'म' जप पाओ ।
श्वास प्रश्वास का यह क्रम, तेरा चलता रहे हर दम ।
न यह साधना कठिन है मीत, करे अभ्यास सरल यह रीत ।
सरल रीत इक और बताऊं, विषयों संग तव मन दृढाऊं ।

[1] प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । (योग दर्शन ।.
अर्थ – अथवा श्वास को चलाने और रोकने से भी मन ऐकाग्र होता है ।

[1] विषयवती जब प्रवृति होय, चित्त एकाग्रता को गोय" ।
सुन साध ने नाथ की वाणी, हो हैरान उस बात बखानी ।
"हे नाथ हूं भया हैरान, विषयों का जन करे क्यों ध्यान ।

दो०-विषय वासना से चित्त, जन का होय मलीन ।
चंचलता मन की बढ़े, बुद्धि भी हो क्षीन" ।। 4092

स्वामी जी ने कहा "हे साध, मत घबराओ योग आराध ।
'विषय' शब्द का अर्थ न जान, लीना जग की वासना मान ।
इस कारण तू भया हैरान, समझो बात न हो परशान ।
ज्ञानेन्द्रियां तुम को प्रतीत, आंख कान व घ्राण लो चीत ।
रसना और स्पर्श कहाई, हर इक का इक विषय है भाई ।
प्रकाश आंख का विषय है मीत, शब्द कान को लो तुम चीत ।
रसना का रस ही लो जान, नासिका का लो गंध पहचान ।
स्पर्श विषय त्वचा का चीन, विषय सबन के मैं कथ दीन ।

दो०-ध्यान विषय में जब लगे, चित्त एकाग्र होय ।
इस का भी अभ्यास हो, सुगम रीत है सोय" ।। 4093

सुना जब साधु ने उपदेश, बोल उठा "मम हे हृदयेश ।
विषयन का मिल पाया ज्ञान, किस विध करूँ मैं उनका ध्यान ।
कर कृपा मुझे आप बतायें, और मुझे अभ्यास करायें" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, ध्यान बताऊँ तुम को सारे ।
इन्द्रिन पांच के कर्म विशेष, मन में सब का है समावेश ।
मन से लो प्रकाश को देख, सूरज चांद वा अग्नि पेख ।

[1] विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी (योग दर्शन I .35)
अर्थ - अथवा (गंध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द) विषयों वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ।

चित्त एकाग्र भी हो पाय, योग का सरल है ये उपाय ।
दिव्य ज्योति यह हो मम मीत, आत्मिक लाभ होय प्रतीत ।
अन्य विषय का ध्यान बताऊँ, दिव्य सुगन्धी तुझे सुंघाऊँ ।

दो०-नासिकाग्र पर चित्त को, करो एकाग्र मीत ।
वहां तुझे तब होयगी, सुगंधी की प्रतीत" ।। 4094क
कहा साध "हे नाथ जी, सुगंधि कैसी होय ।
मन जिज्ञासा ऊपजी, तुम से जानूँ सोय" ।। 4094ख

कहा नाथ "हे साध सुजान, दिव्य गंध का चाहते ज्ञान ।
दिव्य गन्ध का नाम न भाई, अनुभव करें पर कथा न जाई ।
चित्त रमे उस गंध के मांझ, बैठ ध्यान में प्रातः सांझ" ।
कहा साध "यह अद्भुत ज्ञान, प्राप्त किया मैंने भगवान ।
आगे का भी ज्ञान हे नाथ, प्रदान करें इसी के साथ" ।
कहा नाथ "अब हम बतलावें, दिव्य शब्द हम जिमि सुन पावें ।
उस में लीन होय चित्त साध, इस विध ले जन योग आराध ।
घट भीतर आकाश लो जान, जिस का गुण शब्द पहचान ।
वही शब्द यदि सुनना चाहो, कानों को तुम बंद कर पाओ ।

दो०-अंगुलिन से हि मूंद कर, दोय कान हे साध ।
अन्तर की ध्वनि को सुनो, योग लवो आराध ।। 4095

अब मैं तुम को वह बतलाऊँ, रसना का जो विषय जताऊँ ।
तालु संग रसना चिपकाओ, अमृत रस तुम वहां से पाओ ।
उस रस में हो चित्त विलीन, वृत्तियों का उपद्रव क्षीण" ।
सुन कर साध ने यह उपदेश, बोल उठा "हे मम हृदयेश ।
विषय चार के ज्ञान को पाय, चित्त चाहे पंचम सुन पाय" ।
कहा नाथ "अब सायं आना, इस विषय को तभी सुन पाना" ।

दिन दसवां (सायं)

सायं काल जब साधु आया, स्वामी जी उस को बतलाया ।
"चार विषय तुम सुन हो पाये, जिन से मन वश मे आ जाये ।

दो०-आंख कान वा नाक के, विषय जीव के मीत ।
पंचम विषय तो है प्रिय, लो स्पर्श को जीत ।। 4096

स्पर्श की इन्द्री त्वचा पहचान, इस का तत्व पवन लो जान ।
मंद मंद समीर चल पाये, त्वचा को जो अतीव सुहाये ।
उस के स्पर्श में हो मन लीन, इस विध वृत्तियां होवें क्षीण ।
हे साधो तुम है यह जाना, विषयों का महत्व पहचाना ।
सुगम रीत इक है यह भाई, चित्त एकागता की आई ।
अब तुम्हारे चित्त जो होय, पूछ लेवो हे साधो सोय" ।
कहा साध "हे परम ज्ञानी, है जो आप यह विधि बखानी ।
इस में सुधि तन की रह पाय, मैं चाहूं तन भूल ही जाय ।

दो०-तन को भूलूं मैं प्रभो, विधि को ऐसी होय ।
जानन चाहूं हे प्रभो, विधि योग की सोय" ।। 4097

कहा नाथ "तू प्रश्न जो कीन, तुझे मिलेगा ज्ञान नवीन ।
जो जन तन को भूलन चाहे, मन को तन से दूर ले जाये" ।
कहा साध "वह कौन सी रीत, तन से दूर भये जिमि चीत" ।
[1]कहा नाथ "यदि ऐसा चाहो, मन में इक प्रकाश ध्याहो ।
दिव प्रकाश लो उस को जान, जिस से स्थिर होय तेरा ध्यान ।

[1] विशोका वा ज्योतिष्मती (योग दर्शन 1.36)
अर्थ -अथवा शोक रहित प्रकाश वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ।

प्रकाश बिना कुछ और न आय, तेरे ध्यान में वही समाय ।
भूलेगा तुझे तन इस रीत, रहे न तन से फिर कुछ प्रीत ।
दिव्य तेज में चित्त विलीन, ध्यान की एक रीत यह चीन ।

दो० – शुद्ध तेज का ध्यान यह, जिस में शोक न लेश ।
विगतशोक योगी भये, रहे न लेश क्लेश ।। 4098

इस ध्यान में बैठो साध, मन में तेज को लो आराध ।
आकर फिर हम को बतलाना, अपना अनुभव हमें सुनाना" ।
बैठा साध जा इस ही रीत, एकाग्र करके निज वह चीत ।
लौट आया फिर गुरु के पास, और कीन उस वहां अरदास ।
"नाथ आप की आज्ञा मान, कीना मैंने तेज का ध्यान ।
लीन भया उस में मन सारा, भूला तन का सकल पसारा ।
खेद मुझे है इस का नाथ, शीघ्र जुड़ा चित्त तन फिर साथ ।
इस का भी कुछ कहो उपाय, मन जिमि लौट न वहां से आय ।

दो० – लौटे न चित्त तेज से, रहे उसी में लीन ।
आप वही बतलाइये, चित्त वृत्ति हो क्षीन" ।। 4099

कहा नाथ "बस एक उपाय, सुनो वही तुम अब मन लाय ।
सिद्ध न होय यदि वह उपाय, कभी भी मन न टिकने पाय" ।
सुन कर साध नाथ की वाणी, होय चकित कहा "महादानी ।
ऐसा कौन सा है उपाय, जिस बिन कुछभी नहीं हो पाय" ।
[1] कहा नाथ "सब को यह ज्ञात, वैराग्य बिना न बनती बात ।
विरक्त चित्त से हो अभ्यास, सिद्धि मिले योगी को खास" ।

---

[1] वीतरागविषयं वा चित्तम् (योग दर्शन I .37)
अर्थ – अथवा विषयों के राग से रहित योगी का चित्त वृत्तियों को संयमित करता है । अर्थात मन की स्थिति को बांधने वाला होता है ।

सुनी साध सब नाथ की बात, त्रिकाल सत्य जो है विख्यात ।
कहन लगा "सर्वज्ञ दयाल, मेरे मन इक और सवाल ।

दो०-जीव जगत से नाथ जी, विरक्त किमि हो पाय ।
सुनना चाहूँ सद्गुरो, इस के हेत उपाय" ॥ 4100

कहा नाथ "यह ठीक सवाल, उत्तर दूंगा प्रातः काल" ।

दिन ग्यारहवां (प्रातः)

प्रातः काल साध चलि आया, वही प्रश्न वह फिर कर पाया ।
"प्रश्न यही मम मन में आये, विराग किमि मन में बढ़ पाये ।
वैराग्य बिना न होवे योग, इसे तो समझें सब ही लोग ।
किस विध जन यह गुण अपनावें, कर किरपा मुझ को बतलावें ।
जगत राग का पाश है नाथ, खण्डित होय सद्गुरु के हाथ" ।
कहा नाथ "तू ठीक बताया, राग पाश ने सबन फंसाया ।
छूटे वह जिसे गुरु छुड़ावे, योग की युक्ति जभी बतावे ।
राग चित्त का रोग पहचान, वह विराग से स्वस्थ हो जान ।

दो०-स्वास्थ्य जान वैराग्य को, राग रोग पहचान ।
इसी रोग की औषधि, है रची भगवान" ॥ 4101

कहा साध "हे योगि महान, उस औषधि का करो बखान ।
जड़ी कौन सी ऐसी न्यारी, शान्त राग को करने हारी" ।
कहा नाथ "सुन वचन हमारा, आधि व्याधि का जग पसारा ।
आधि व्याधि जभी रच पायी, उस की औषध साथ बनाई ।
हर ताले की ताली होय, हर रोग की औषध होय ।
राग की औषधि लो तुम जान, जिससे उपजे मन में ज्ञान ।
वह औषध हर एक के पास, जो है राग की औषध खास ।

निद्रा में जब जन सो पावे, क्यों न उस की समझ में आवे ।
इक दिन चिर निद्रा में सोना, क्यों फिर तिल तिल पर है रोना ।

दो०–[1] निद्रा की जो सीख है, उसे सुनें जब साध ।
राग न उपजे चित्त में, उपजे सदा विराग ।। 4102

और भी सुन लो तुम मम मीत, प्रभु की दया पर हो प्रतीत ।
सोया जन जब निज को खोता, लाभ हानि पा हंसत रोता ।
खुले आंख तब होत हैरान, कीन असत ने मुझे परशान ।
निज स्वप्न पर करे विचार, ज्ञान मिले 'यह जगत निसार' ।
'चिर स्वप्न' यह जीवन भाई, दिन एक यह टूट ही जाई ।
'चिर स्वप्न' में रोना धोना, और लाभ पा खुश जो होना ।
यह जानो मूर्खता की रीत, विराग से ले जन मन को जीत ।
जीवन 'दीर्घ स्वप्न' लो जान, मृत्यु को 'चिर नींद' लो मान ।

दो०–कर के ऐसी धारणा, हो विरक्त जब साध ।
प्रभु कृपा को पाय कर, लेय योग आराध'' ।। 4103

बोला साध ''धन्य हूँ पाया, ज्ञान अपूर्व आप से पाया ।
वैराग्य की यह जानी रीत, लागे अब मम योग में चीत ।
एक बात पूछूँ महाराज, जो आई मम मन में आज ।
दो ध्यान की रीत बतलाई, शब्द आदि विषयक कथ पाई ।
प्रकाश की सुन्दर दूजी रीत, हे नाथ मम आई चीत ।
और भी यदि हो को मम नाथ, कथन करें वह भी इस साथ'' ।
कहा नाथ ''सुन लो तुम भाई, रीतियों में न योग समाई ।

[1] स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा (योग दर्शन १.38)

अर्थ –स्वप्नज्ञान और निद्राज्ञान का आलंबन लेने वाला चित्त मन की स्थिति को बांधने वाला होता है ।

[1] अपनी श्रद्धा के अनुसार, किसी लक्ष्य को ले जन धार ।
वृत्ति एकाग्र जब हो जाये, और क्लेश न बाधा पाये ।
योग प्रक्रिया जानो ठीक, 'यथा अभिमत ध्यान' की रीत ।

दो०-'यथा अभिमत ध्यान' की, रीत सनातन मीत ।
चित्त बंधन न मानता, लो यह मन में चीत" ।। 4104

सुनी जब सद्गुरु की यह बात, साध चकित हो बोला "तात ।
अभिमत का जो ध्यान बताया, मेरा मन भ्रांत हो पाया ।
चित्त में जो कुछ सकत समाय, वह उसी का ध्यान कर पाय ।
मन की जो भी सीम है नाथ, अवश्य बतायें इस के साथ" ।
कहा नाथ "लो बात यह जान, चित्त को तुम असीम पहचान ।
इसमें सब कुछ सकत समाये, इस से बाहिर न कुछ रह पाये ।
[2] परमाणु को भी सकत ग्राह्य, समस्त विश्व भी यहां समाय ।
चित्त की ग्रहण शक्ति इमि जान, इस की उपमा कहीं न मान ।

दो०-चित्त अनूपम जान लो, ग्रहण शक्ति में मीत ।
उपमा इस की न मिलत, कहीं जगत, यह चीत" ।। 4105

कहा साध "हे मम भगवान, मन का यह अति दुरूह ज्ञान ।
आप ने जो शक्ति बतलाई, मेरी बुद्धि सुन चकराई ।
अल्प बुद्धि हूं मैं भगवान, समझ पाऊँ न यह सब ज्ञान ।

---

[1] यथाभिमतध्यानाद्वा (योग दर्शन 1.39)
अर्थ - अथवा (शास्त्रीय मर्यादानुसार) जो जिस को अभिमत (इष्ट) हो, उस के ध्यान से मन की स्थिति बंध जाती है ।

[2] परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः (योग दर्शन 1.40)
अर्थ - चित्त का सूक्ष्म विषयों में परमाणु पर्यन्त और महान पदार्थों में परम महापर्यन्त वशीकार हो सकता है ।

मन का रूप पुनः समझायें, कृपा दृष्टि मुझ पर कर पायें"।
कहा नाथ "हे साध सुजान, मनस्वी जन तू, न अनजान।
दे दृष्टांत तुझे बतलाऊँ, स्पष्ट विषय जिमि मैं कर पाऊँ।
क्षीण वृत्ति जब चित्त हो जाय, निर्मल चित्त तब वह कहलाय।
स्थिरता को जब वह पा जाता, और एकाग्रवृत्ति कहाता।
उसका रूप तभी पहचानो, निर्मल दर्पण वत जब जानो।
दर्पण का जो गुण है भाई, मन भी वैसा ही हो जाई।
दर्पण में अणु भी दिख पाय, आकाश उसी में आ समाय।
[1] ऐसे ही तू मन को जान, सभी प्रतिबिंब वहां पहचान।
प्रतिबिंब दर्पण का हो रूप, दर्पण प्रतिबिंब का स्वरूप।
चित्त तिमि वृत्ति का हो रूप, वृत्ति चित्त का भये स्वरूप।

दो० – 'चित्त' वा 'वृत्ति' जान लो, भिन्न न दीखें मीत।
'समापत्ति' के नाम से, यह क्रिया प्रतीत ।। 4106

अब सायं को तुम चलि आना, इसी विषय को फिर सुन पाना"

दिन ग्यारहवां (सायं)

शाम को जब साध चलि आया, स्वामी जी उस को फरमाया।
"हे साधो क्या तुम पहचाना, 'समापत्ति' को क्या तुम जाना।
जो कुछ समझा मेरे मीत, वह बतलाओ ला कर चीत"।

---

[1] क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः
(योग दर्शन 1.41)

अर्थ – (राजस – तामस वृत्तिरहित) स्वच्छ चित्त की उत्तम जातीय (अतिनिर्मल) मणि के समान ग्रहीता (अस्मिता ज्ञान प्राप्त करने वाला) ग्रहण (इन्द्रियों की क्रिया) ग्राह्य (विषय स्थूल तथा सूक्ष्म) में स्थित हो कर उन में तन्मय हो जाना समापत्ति (तद्रूप योग) है।

कहा साध "हे स्वामी मेरे, शरण पड़ा मैं चरणी तेरे ।
मंदबुद्धि जो कुछ सुन पाया, वही कहूं मैं पा तव दाया ।
चित्त में जब कुछ बिंबित होय, चित्त का रूप बने तब सोय ।
आप से मैं ज्ञान यह पाया, चित्त इक दर्पण आप समझाया ।
पदार्थ का चित्त से संयोग, समझा यह 'समापत्ति' योग ।

दो०-मंदबुद्धि हूं नाथ जी, जो समझा इस दीन ।
दया आप की पाय कर, वर्णन मैं ने कीन" ॥ 4107

कहा नाथ "तुम समझ हो पाय, वर्णन भी तुम शुद्ध कर पाय ।
आगे अब तुम को बतलाऊँ, चित्त की क्रिया को कथ पाऊँ ।
चित्त में प्रतिबिंब जब आये, लीन उस में चित्त हो पाये ।
पदार्थ का स्वरूप पहचाने, गुण भी उस का तब वह जाने ।
और वह जाने उस का नाम, 'समापत्ति' का यह पूर्ण काम ।
[1] यह 'सवितर्क समापत्ति' जान, इस से भिन्न और भी मान ।
क्या मन में यह बात समाई, और स्पष्ट तुझे हो पायी" ।
कहा साध "हे मम प्रिय नाथ, सब कुछ लगा न अभी मम हाथ ।
चित्त पदार्थ को जब ध्यावे, चित्त की ही वह वृत्ति कहावे ।
'समापत्ति' वा 'वृत्ति' में भेद, स्पष्ट करें तो मिटे मम खेद ।

दो०-इन दोनों की भिन्नता, स्पष्ट करें मम नाथ ।
उलझन मेरी दूर हो, बैठ चरण तव साथ" ॥ 4108

कहा नाथ "तुम पूछा ठीक, प्रश्न करे जब शिष्य निर्भीक ।
बहु जन को तब मिलता ज्ञान, जो जिज्ञासु शरण में आन ।

[1] तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः । (योग दर्शन 1.42)
अर्थ - उन समापत्तियों में से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों (भेदों) में मिली हुई (अर्थात इन तीनों भिन्न 2 पदार्थों का जिस में मान होता है) सवितर्क समापत्ति है ।

वृत्ति जब भी चित्त में आये, चंचल चित्त में रुक न पाये ।
स्थिर जब वृत्ति हो चित्त मांहि, और रहे दृढ़ चित्त के मांहि ।
वही स्थिति 'समापत्ति कहलाय, समाधि योग भी वही कहाय ।
मिट पाया क्या संशय तेरा, भाव स्पष्ट भया क्या मेरा" ।
कहा साध "कुछ लीना जान, दे दृष्टांत अब करे बखान ।
'समापत्ति' का पूर्ण जो ज्ञान, स्पष्ट करें दे कर प्रमाण ।

दो० – स्पष्ट होय दृष्टांत से, गूढ़ विषय यह नाथ ।
ग्रहण करे जन मन्दमति, प्रमाण के ही साथ" ॥ 4109

कहा नाथ "तुम को बतलाऊँ, दे दृष्टांत तुझे समझाऊँ ।
चन्द्रमा को देख लो भाई, वृत्ति चान्द की तव मन आई ।
वृत्ति स्थिर यदि यह हो जाये, 'समापत्ति' यह तभी कहाये ।
वितर्क चले तब मन के बीच, रूप नाम और गुण समीच ।
चांद का नाम न भूलन पाय, चित्त में सुन्दरता भी आय ।
वही आकार बने मन बीच, 'सवितर्क समापत्ति' यह समीच ।
वृत्ति एकाग्र और हो जाय, नाम का भास भी रह न पाय ।
गुणों का भी रहे नहीं भास, पदार्थ मात्र का हो आभास ।
[1] अन्य समापत्ति है यह मीत, 'निर्वितर्क' लो इसको चीत ।

दो० – निर्वितर्क समाधि में, रहे एकाग्र चित्त ।
केवल एक पदार्थ में, चले न किसी निमित्त" ॥ 4110

कहा साध "जो कुछ सुन पाया, स्पष्ट मुझे सब कुछ हो पाया ।
एक बात मेरे मन आई, चांद की वृत्ति आप बताई ।

[1] स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का (योग दर्शन I .43)
अर्थ – स्मृति के शुद्ध हो जाने पर अर्थ मात्र से भासने वाली अपने रूप से रहित (चित्त वृत्ति) निर्वितर्क समापत्ति है ।

चित्त में सूक्ष्म विषय जब आय, उसकी स्थिरता किमि हो पाय ।
करिये यह भी बात स्पष्ट, भ्रांति मेरी जिमि होय नष्ट" ।
कहा नाथ "तुम ठीक विचारा, योग विषय सुगम नहीं सारा ।
स्थूल लक्ष्य मन में टिक पाये, सूक्ष्म फिसल तुरन्त ही जाये ।
इस का भी तो है उपचार, सुनना आ प्रातः इस द्वार" ।

दिन बारहवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, स्वामी जी ने पास बिठाया ।

दो०-पास बिठाकर साध को, कहा मुलख जी राज ।
"हे साधो तुम को कहूं, गूढ़ बात मैं आज ।। 4111

सूक्ष्म विषय का करना ध्यान, कठिन कार्य है साध सुजान ।
विचारवान जो होय पुमान, सूक्ष्म का वह सके कर ध्यान ।
विचार बिना न संभव होय, सन्मुख रहे न सूक्ष्म जोय ।
स्पष्ट करूं अभी दे प्रमाण, समझ पाओ जिमि सारा ज्ञान ।
आत्मतत्व कहूं सूक्ष्म भाई, इस का ध्यान सुनो मन लाई ।
आत्मा का हर घट में वास, विदित सबन को बात यह खास ।
फिर भी इस को भूल ही जायें, रूप न इस का सन्मुख लायें" ।
कही साध ने बीच में बात, "आत्मा का तो रूप न तात ।

दो०-आत्मा का तो रूप न, किमि सके हो ध्यान ।
यही बात मैं पूछता, करिये नाथ बखान" ।। 4112

कहा नाथ "सुन लो तुम साध, आत्मा को लो इमि आराध ।
इतना तो तुम करो विचार, आत्मा है देह का आधार ।
और भी हैं इस के गुण साध, मनन करो उन का बिन बाध ।
दिव्य तेज है उस का रूप, दिव्य दृष्टि से दीखे गूप ।

अनुभव से योगी कथ पायें, ऐसा ही सब मनन में लायें ।
नाम कई हैं उस के आये, शास्त्रों में जो हैं कथ पाये ।
इस विध नाम गुण और रूप, विचार सहित ला ध्यान में गूप ।
[1] सूक्ष्म विषय इसी विध ध्यायें, 'सविचार समाधि' हि कथ पायें ।

दो० – सूक्ष्म विषय का ध्यान जो, कथन किया जिमि मीत ।
क्या हृदयंगम हो गया, बतलाओ ला चीत" ।। 4113

कहा साध "मैं ने सुन पाया, ज्ञान अनोखा मन में आया ।
स्थूल और सूक्ष्म का जो ध्यान, कीना धन्य बतला भगवान ।
और भी कुछ हो मेरे योग, आप बतला कर करें सुयोग" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, योग का गूढ़ अतीव ज्ञान ।
'सविचार' समाधि है बताई, 'निर्विचार' अब सुन लो भाई ।
सूक्ष्म विषय का नाम व रूप, और सब गुण जो उसके गूप ।
मन में सब का रहत विचार, 'सविचार' का है यह आधार ।
नाम व गुण जब होंय विलीन, सूक्ष्म रूप में चित्त हो लीन ।
'निर्विचार' समाधि कहलाये, विरला योगी इस को पाये ।

दो० – निर्विचार अभ्यास यह, दुर्लभ है मम मीत ।
जन्मान्तर की साधना, से होवे प्रतीत" ।। 4114

सुनी साध ने गुरु की वाणी, बोल उठा वह "हे सन्मानी ।
दुर्लभ अवस्था जो बताई, मम ध्यान में है कुछ आई ।
मैं पूछूं अब आप से नाथ, आप बतला कर करें सनाथ ।
'नाम' वा 'गुण' किमि होंय विलीन, केवल 'रूप' में मन विलीन ।

[1] एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता । (योग दर्शन I .44)
अर्थ – इस (सवितर्क और निर्वितर्क समापत्ति के निरूपन से) ही 'सविचार' और 'निर्विचार' समापत्तियां सूक्ष्म विषय में व्याख्यान की हुई समझनी चाहिऐं ।

इस को करें यदि नाथ स्पष्ट, मम भ्रांति हो सके तब नष्ट" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, नष्ट होयें तव संशय सारे ।
ध्यान से सुन पाओ मम बात, दे दृष्टांत समझाऊं तात ।
उपमा देय तुझे समझाऊँ, स्पष्ट भाव निज जिमि कर पाऊँ।

दो०-स्पष्ट करूं मैं भाव निज, दे कर इक दृष्टांत ।
तेरे मन की भ्रांति जो, सुन कर होवे शांत ।। 4115

वेला तो अब बहुत विहायी, उठने की है मन में आई ।
सायं काल जभी चलि आओ, वार्ता यही पुनः सुन पाओ" ।

दिन बारहवां (सायं)

सायं काल जब साधु आया, उस को स्वामी जी कथ पाया ।
"सुन दृष्टांत अब तुम मन लाय, स्पष्ट भाव जिमि तुझे हो पाय ।
प्यारा सज्जन होय जब दूर, स्मरण करें ले नाम जरूर ।
और गुणों का करें बखान, प्रसन्न तिमि हो मन महान ।
आ कर गले मिले जब मीत, उमड़ पड़े तब ऐसी प्रीत ।
भूल जाय तब सब ही बात, दृष्टि रहे बस उसी के गात ।

दो०-होत है निर्विचार में, मन का यही हवाल ।
लक्ष्य रहे सन्मुख सदा, केवल वह सब काल ।। 4116

बात साधो क्या भयी स्पष्ट, और भया क्या संशय नष्ट ।
अब बताओ निज मन की बात, पूछो जो हो चित्त में तात" ।
साध कहा "मैं क्या बतलाऊँ, ज्ञान अनुपम आप से पाऊँ ।
'संप्रज्ञात' व 'असंप्रज्ञात', स्थूल समाधि का विषय तात ।
'सविचार' और व 'निर्विचार', सूक्ष्म विषय इन का करतार ।
स्थूल विषय तो हम लें जान, सूक्ष्म का प्रभो दीजो ज्ञान ।

सूक्ष्म का क्या है लक्षण देव, आप से समझूँ यह भी भेव" ।
[1] कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, सूक्ष्म का स्वरूप जताऊँ ।

दो० - निर्विचार समाधि में, चित्त में सूक्ष्म वास ।
प्रकृति मूल का रूप जो, या आत्म आभास ।। 4117

इन दो का जब होय आभास, ज्ञान मिले तब जीव को खास ।
यह स्थिति जो योग की भाई, विरले हि किसी जन ने पाई ।
कई जन्मों में कर अभ्यास, इस स्थिति को, को पाये खास ।
पर यह अन्तिम नहीं है ठौर, इस से भी कुछ आगे और ।
[2] यहां तलक जो हूं कथ पाया, 'सबीज समाधि' नाम धराया" ।
कहा साध "हे योगी राज, ज्ञान दिया जो आपने आज ।
पराकाष्ठा साधन की जान, अति कठिन और इसको मान ।
मेरे मन विचार यह आय, अनुभव यहां पर हो क्या पाय ।

दो० - सबीज समाधि में प्रभो, योगी जो कुछ पाय ।
जानन चाहूं नाथ जी, दृढ़ इच्छा मन आय" ।। 4118

कहा नाथ "हे साध सुजान, इस का भी मैं दे रहा ज्ञान ।
[3] निर्विचार समाधि जन पाये, आत्मा निर्मल तब हो जाय" ।
साध कहा "हे नाथ महान, आत्मा का मुझे दीजो ज्ञान ।
आत्मा शुद्ध निर्लेप कहाय, आत्मा को नहीं मल लग पाय ।

---

[1] सूक्ष्मविषयत्वं चालिंग पर्यवसानम् (योग दर्शन I .45)
अर्थ - सूक्ष्मविषयता अलिंग (अर्थात वह जिस का लिंग अर्थात चिह्न भी न हो) पर्यन्त है।
[2] ता एव सबीजः समाधिः (योग दर्शन I .46)
अर्थ - ये पूर्वोक्त चारों समापत्तियां सबीज समाधि कहलाती हैं ।
[3] निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः (योग दर्शन I .47)
अर्थ - निर्विचार समाधि की वैशारद्य(प्रवीनता) होने पर आत्मा की निर्मलता होती है ।

निर्मल जो, क्या निर्मल होय, यह ज्ञान जन आप से गोय" ।
कहा नाथ "यह सच है भाई, आत्मा निर्मल दोष न राई ।
पर वह जग में जब उपजाये, संग दोष उसमें आ जाये" ।
कहा साध "हे गुरु महाराज, यह भी स्पष्ट करें मुझे आज ।
संग दोष से क्या है भाव, किस विध बिगड़े आत्म स्वभाव ।

दो०-अविनाशी शुद्ध आत्मा, बिगड़े किस विध नाथ ।
निर्मल फिर किमि हो सके, 'निर्विचार' के साथ" ।। 4119

कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, दे दृष्टांत तुझे समझाऊं ।
वर्षा बिन्दु शुद्धतम माना, गिर भूमि पर होत मलाना ।
सूर्य ताप पड़े उस ऊपर, शुद्ध होय फिर रहे न भू पर ।
आत्मा प्रकटे जभी संसार, संस्कार युक्त हो बहु प्रकार ।
निर्विचार समाधि जब पाय, बहु दोषों से मुक्त हो जाय ।
भयी विगत क्या भ्रांति तेरी, आत्मविद्या अतीव घनेरी ।
इस को समझ वही जन पाये, योग अवस्था में जो आये ।
और कहो जो पूछन चाहो, उस का उत्तर हम से पाओ ।

दो०-निर्विचार समाधि को, सुगम न पाना मीत ।
बहु जन्मों की साधना, ही सकत यह जीत" ।। 4120

कहा साध "हे शिष्य सहाय, पुनः बात मेरे मन आय" ।
कहा नाथ "जो अब मन आय, वह बतलानी प्रातः आय" ।
इतना कह स्वामी उठ पाय, और वे अपने कक्ष सिधाय ।

दिन तेरहवां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, उसे नाथ ने पास बिठाया ।
और कहा "हे साध प्यारे, चित्त आई थी क्या तिहारे ।

कह दो अपने मन की बात, स्पष्ट करूं मैं वह भी तात" ।
कहा साध "हे शिष्य सहायी, बात अनोखी है मन आई ।
आज्ञा हो तो पूछूँ देव, प्राप्त करूँ मैं योग के भेव ।

दो० – निर्विचार समाधी से, आत्मा हो जब शुद्ध ।
लाभ होय तत्काल क्या, बिठलाओ मम बुद्ध" ।। 4121

कहा नाथ "सुन लो मम मीत, बैठे बात यह तेरे चीत ।
जो कुछ जन को यह दे पाये, उसकी उपमा कहीं न आये ।
[1] जन को मिलता तब वह ज्ञान, 'ऋतंभर' जिस का है अभिधान ।
सके जो पा ऋतंभर ज्ञान, कोटिन में इक योगी जान" ।
कहा साध "हे नाथ सुजान, ऐसा दुर्लभ जो है ज्ञान ।
उसकी क्या परिभाषा देव, इसका भी मैं पाऊं भेव" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, वह परिभाषा नहीं आसान ।
[2] इसी बात से जान लो सार, वह ज्ञान इक अलख अपार ।
शास्त्रादि में जो कथ पाया, वह वहां तक पहुंच न पाया ।

दो० – ऐसा ज्ञान वह जानिये, है अलौकिक रूप ।
पढ़े सुने अनुमान के, सदृश नहीं स्वरूप" ।। 4122

साधु था आश्चर्य में आया, तब स्वभाविक ही कह पाया ।
"ऐसी अवस्था से हे नाथ, क्या लागे तब जीव के हाथ ।

---

[1] ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा (योग दर्शन 1.48)
अर्थ – (अध्यात्म प्रसाद के लाभ होने पर) जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है उस का नाम 'ऋतंभरा प्रज्ञा' (सचाई को धारण करने वाली) है ।

[2] श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् । (योग दर्शन 1.49)
अर्थ – आगम और अनुमान की प्रज्ञा से 'ऋतंभरा प्रज्ञा' का विषय अलग है । विशेष रूप से 'अर्थ' का साक्षात्कार कराने से ।

क्या जीव तब मुक्त हो जाय, अथवा लाभ कुछ और उठाय ।
यही बात मैं जानन चाहूं, अपना संशय दूर हटाऊँ'' ।
कहा नाथ ''सुन लो मम मीत, स्पष्ट करूं मैं जो तव चीत ।
ऐसी अवस्था जब पा जाय, जीव मोक्ष के निकट आ जाय ।
'निर्विचार' का जो संस्कार, प्रबलतम है वह हर प्रकार ।
[1]अन्य संस्कार सब मिट जायें, 'निर्विचार' जभी जन पायें ।

दो०-'निर्विचार' को जानिये, उसका जो संस्कार ।
दूर करे सब जीव के, पूर्व के संस्कार'' ।। 4123क
कहा साध ''हे नाथ मम, अन्तिम पूछूँ बात ।
रह पाये संस्कार जो, वह किमि मिट जात'' ।। 4123ख

कहा नाथ ''हे योगी साध, प्रश्न पूछा जो तू निर्बाध ।
[2] उस का उत्तर सरल न जान, सर्व निरोध की अवस्था मान ।
इस अवस्था की बात चलाना, जानो नभ को ही छू पाना ।
मत पूछो तुम अभी यह बात, अभी अधिकारी न तुम तात'' ।
तभी साध विनती कर पाया, ''हे नाथ मैं 'शरणी' आया ।
आप अधिकारी अब बनायें, योगारूढ़ मुझे कर पायें'' ।
कहा नाथ ''हे साध प्यारे, योग नियम जो पाले सारे ।
कालांन्तर अधिकारी होय, सहज पके जो मीठा सोय ।

---

[1] तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी (योग दर्शन 1.50)
अर्थ –उस (ऋतंभरा प्रज्ञा) से उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य सब संस्कारों का बाधक है।

[2] तस्यापि निरोधे सर्वनिधान्निर्बीजः समाधिः (योग दर्शन 1.51)
अर्थ –उस ऋतंभरा प्रज्ञा जन्य संस्कार के भी निरोध हो जाने पर सब संस्कारों के निरोध हो जाने से निर्बीज समाधि होती है ।

दो०-राज योग के नेम जो, उन को पालो मीत ।
कालान्तर में साध जी, लोगे मन को जीत'' ॥ 4124

सुन कर नाथ का यह आश्वास, कीनी साध प्रकट जिज्ञास ।
''हे नाथ वे नेम बतायें, जो अधिकारी मुझे बनायें'' ।
नाथ कहा ''सुन साध सुजान, मुख्य नेम तुम तीन लो जान ।
इन नियमों को पाले जोय, कालान्तर अधिकारी होय ।
[1] प्रथम नेम 'तप' लो तुम जान, दूजा लो 'स्वाध्याय' को मान ।
तीजा 'ईश्वर का प्रणिधान', ये आधार योग के जान ।
'क्रिया योग' ये कथनी आयें, विमुख न इन से जन हो पायें ।
आजीवन जो करत अभ्यास, जानिये साधक वह ही खास ।

दो०-'क्रियायोग' जो करत है, आजीवन मम मीत ।
बन अधिकारी योग का, लेता मन को जीत ॥ 4125

सायं काल जभी चलि आना, यह प्रसंग समझ तब पाना'' ।

दिन तेरहवां (सायं)

सायं काल साध चलि आया, विनय नाथ से तब कर पाया ।
''हे नाथ आप ने बतलाया, 'तप' का करना था कह पाया ।
'स्वाध्याय' को भी जन कर पाय, 'ईश्वर का प्रणिधान' अपनाय ।
तब अधिकारी योग का होय, इन बिन सफलता न जन गोय ।
कर किरपा अब नाथ बतायें, किस विध तप को हम कर पायें ।
'स्वाध्याय' की रीत जो होय, वह भी यह जन आप से गोय ।
'ईश्वर का प्रणिधान' हे देव, ईश्वर की किस विध हो सेव ।

[1] तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः (योग दर्शन II.1)
अर्थ -तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है ।

दो०-खोल बतायें नाथ जी, इन सबन का रूप ।
दासन के तुम नाथ हो, योगिन के वा भूप" ॥ 4126

कहा नाथ "तुम को बतलाऊँ, 'योगतपस्या' मैं कथ पाऊँ ।
योग साधन जब जन कर पाय, देह तब उस में बाधा लाय ।
मन भी करता कभी हताश, योगी त्यागे लेश न आश ।
देह व मन का संयम भाई, योग तपस्या यही कहाई ।
अब सुनो स्वाध्याय की बात, योगियों के जो अनुभव तात ।
उन को पढ़ो सुनो तुम मीत, स्वाध्याय की यह उत्तम रीत ।
अब ईश्वर प्रणिधान बताऊँ, निज मन में जो वह कथ पाऊँ ।
ईश्वर पर जो दृढ़ विश्वास, ईश्वर का प्रणिधान वह खास ।

दो०-ऐसा जीवन होय जब, साधक का हे साध ।
वह अधिकारी योग का, लेत योग आराध" ॥ 4127

कहा साध "हे नाथ स्वामी, सब विध आप हो अन्तर्यामी ।
तप की बात जो तुम बताई, तन व मन की संयमताई ।
इस से बढ़ क्या तप हो पाय, योग तपस्या जो कहलाय ।
योगियों का अनुभव महान, लिया स्वाध्याय हेत पहचान ।
ईश्वर पर दृढ़ निष्ठा नाथ, आप बतलाई इनके साथ ।
कहा जो क्रिया योग महान, धर्म न इस के और समान ।
इस को जो जन लेय अपनाय, वह तो देव तुल्य हो जाय ।
हे नाथ, अब आप बतलायें, साधक इससे क्या कुछ पायें ।

दो०-क्रियायोग जो जन करे, उस का फल जो होय ।
आप बतायें नाथ जी, सुनूं आप से सोय" ॥ 4128

कहा नाथ "तुम ठीक कह पाय, 'क्रिया' उत्तम योग कहलाय ।

[1] 'समाधि' अवस्था इस से पायें, 'क्लेश भी जन को नहीं सतायें ।
क्लेश तनु मात्र ही रह पायें, ऐसी अवस्था में वे जायें ।
देव तुल्य बनता इन्सान, इस का जान प्रभाव महान" ।
पूछा साध तब नत कर माथ, "क्लेश का भाव क्या है नाथ" ।
नाथ कहा "हे साध सुजान, पूछा तूने प्रश्न महान ।
[2] क्लेश पांच हैं लो तुम जान, प्रथम अविद्या ही पहचान ।
चार क्लेश और हैं भाई, अस्मिता, राग, द्वेष कहाई ।
अभिनिवेश को अन्तिम जान, प्राणी के मन भय यह मान ।
चित्त के भीतर इन का वास, योगी के मग विघ्न हैं खास ।

दो० - क्लेश पांच जो हैं कथे, जब तक वे मन बीच ।
हो लाभ नहीं मोक्ष का, हो न योग समीच" ॥ 4129

कहा साध "हे सद्गुरुदेव, एक बतायें मुझ को भेव ।
इतने सारे क्लेश ये नाथ, उपजें चित्त में किमि इक साथ" ।
कहा नाथ "तुम ठीक बखाना, भूला मैंने तुझे बताना ।
[3] अविद्या जो क्लेश है भाई, सब क्लेशों की जननी भाई ।
उस से उपजें अन्य क्लेश, इस में है संदेह न लेश ।
अस्मिता आदि को लो जान, सदा नहीं वे एक समान ।
प्रसुप्त कभी व तनु हो जायें, विछिन्न कभी उदार लखायें ।

---

[1] समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च । (योग दर्शन II .2)
अर्थ - समाधि की भावना के लिये और क्लेशों को तनु करने के लिए 'क्रिया योग' है ।

[2] अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः (योग दर्शन II .3)
अर्थ - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश क्लेश हैं ।

[3] अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् (योग दर्शन II .4)
अर्थ - प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले अस्मिता आदि क्लेशों का अविद्या क्षेत्र है ।

इन का सदैव नहीं इक रूप, क्षण क्षण बदलें निज स्वरूप

दो०-अविद्या से हि ऊपजें, धार अनेकों रूप ।
दुखी करें ये साध को, रह जगत से गूप ।। 4130

हे साध अब तुम चलि जाओ, प्रातः काल लौट कर आओ ।
क्लेश संबंधी और जो बात, सुन पाओगे तब ही तात'' ।

दिन चौदहवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, सद्गुरु ने तब उसे बताया ।
''अविद्या' की अब सुन लो बात, 'क्लेशों' की जो मां है तात ।
[1] सीधे को जो उलटा देखे, उलटे को जो सीधा पेखे ।
अविद्या उस के सर समाई, जन अविद्या ग्रस्त वह भाई ।
अनित्य को वह नित्य ले मान, अशुद्ध को ले शुद्ध पहचान ।
दुख को सुख कह गले लगाये, अनात्म को कथ आत्म पाये ।

दो०-अविद्या की पहचान हि, है कथी यह साध ।
इस से बच कर जो चले, लेत योग आराध'' ।। 4131

कहा साध ''हे गुरु महाराज, ज्ञान मिला मुझे नूतन आज ।
हो गयी भ्रांति मम है दूर, उदय भया जिमि ज्ञान का नूर ।
अविद्या से मैं बच के चालूं, असत को न अब सत कर मानूं ।
करिये दया अब मुझ पर नाथ, बिकूं कभी न असत्य के हाथ ।
कर कृपा अब आप बतलायें, भाव 'अस्मिता' का जतलायें ।
'राग' 'द्वेष' आदि हे नाथ, स्पष्ट करें वे भी इस साथ'' ।

[1] अनित्याशुचिदुखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या (योग दर्शन II .5)
अर्थ – अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुख में सुख, और अनात्म में आत्मा का ज्ञान अविद्या है ।

सुन कर साध की यह जिज्ञास, कहा नाथ ला मुख पर हास ।
[1]"अब मैं तुम को यह बतलाऊं, 'अस्मिता' का उद्भव जताऊं ।
'अविद्या' वश कुछ इमि हो जाय, 'कर्ता' निज को भूल ही पाय ।
'करण' को समझे अपना आप, 'करण' बिगड़े तो हो संताप ।
'इकात्मता' यह मिथ्या भाई, है 'अस्मिता' यही कहलाई ।

दो० – द्रष्टा दर्शन शक्तियां, एक जब हों प्रतीत ।
उदय 'अस्मिता' का भये, यही अविद्या रीत" ।। 4132

सुन कर नाथ के गूढ़ विचार, बोला साध "हे जगदाधार ।
गूढ़ बात जो आप बताई, स्पष्ट न मुझ को वह हो पाई ।
किरपा होय यदि तेरी नाथ, लागे ज्ञान तभी मम हाथ" ।
कहा स्वामी "हे साध सुजान, स्पष्ट करूं यह तुमको ज्ञान ।
तन के अंग जो हैं तमाम, आत्म शक्ति से करते काम ।
आत्मा को जो भूल ही जाय, समझ देह को सब कुछ पाय ।
तन से भिन्न न आत्मा जानें, देह को ही सर्वस्व मानें ।
अविद्या जनित यही अज्ञान, 'अस्मिता' है यह लेवो जान ।

दो० – समझ लिया क्या साध तुम, 'अस्मिता' का स्वरूप ।
इस वश सारा जगत है, क्या प्रजा क्या भूप" ।। 4133

कहा साध "मैंने सुन पाया, स्पष्ट मुझे है अब हो पाया ।
अविद्या से जो उपजत 'राग', होता क्या वह हे महाभाग" ।
कहा स्वामी "हे साध सुजान, 'राग' का भी अब सुनो बखान ।

---

[1] दृग्दर्शनशक्तयोरेकात्मतेवास्मिता (योग दर्शन II .6)
अर्थ – द्रष्ट शक्ति (आत्मा) और दर्शन शक्ति (आंख आदि शरीर के अंगों की प्रक्रिया) का एक स्वरूप जैसा भासना अस्मिता क्लेश है ।

[1] सुख के भोग की प्रीत महान, इस को ही तुम 'राग' पहचान ।
[2] उलट राग से 'द्वेष' लो जान, दुख प्राप्ति से घृणा लो मान" ।
कहा साध "हे सद्गुरुदेव, 'राग' 'द्वेष' का समझा भेव ।
'अभिनिवेश' क्या होता नाथ, यह भी स्पष्ट करें इस साथ" ।
स्वामी बोले "सुन लो तात, 'अभिनिवेश' की कह दूं बात ।
[3] 'अभिनिवेश' को मैं इमि जानूं, अति कठिन अज्ञान ही मानूं ।

दो० - [4] अतिकठिन अज्ञान यह, 'अभिनिवेश' जो नाम ।
लाखों विद्या जन पढ़े, बने न कुछ भी काम ।। 413 4

मरने का भय सबन डरावे, इस से त्राण हर जन चाहवे ।
अविद्या जनित यह अभिनिवेश, जानो सभी से बड़ा क्लेश ।
कौन बचा मरने से भाई, यम का दवार खुला सदा ही ।
जन अनेक हम मरते देखों, अपना काल न कभी उलेखें ।
अचरज की है बात अगाद, अपनी मृत्यु आये न याद ।
ऐसा दृढ़ अविद्या का पाश, 'अभिनिवेश' करे सबन हताश" ।
बोला साध "समझ हूं पाया, 'अभिनिवेश' जो आप बताया ।

---

[1] सुखानुशयी रागः (योग दर्शन II .7)
अर्थ - सुख - भोग के पीछे जो चित्त में उस के भोग की इच्छा रहती है वह राग है ।

[2] दुखानुशयी द्वेषः (योग दर्शन II .8)
अर्थ - दुख अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त में रहती है उस को द्वेष कहते हैं।

[3] स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः (योग दर्शन II .9)
अर्थ - (जो मरने का भय हर एक प्राणी में) स्वभावतः बह रहा है और विद्वानों के लिये भी ऐसा ही है (जैसा कि मूर्खों के लिए) वह अभिनिवेश क्लेश है ।

[4] अभिनिवेश का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार से है -
'अभितो निवेशः' अर्थात 'अवश्य ही इस शरीर में रहना चाहिए' इस प्रकार की दृढ़ वृत्ति होनी ।

अविद्या आदि पांच क्लेश, चित्त को चंचल करें हमेश ।

दो०–इस का जो उपचार है, वह बताया आप ।
क्रियायोग की साधना, दूर करे संताप" ।। 4135

कहा नाथ "यह ठीक है बात, पर कुछ और बताना तात ।
सायं काल जब चलि आओ, आगे की तुम तब सुन पाओ" ।

दिन चौदहवां (सायं)

सायं काल साध चलि आया, उत्सुक चित्त बैठ वह पाया ।
मिलेगा नूतन मुझ को ज्ञान, ऐसा था उसका अनुमान ।
बैठ गया वह नाथ के पास, नाथ कहा तब ला मुख हास ।
"क्रिया योग के गुण बहु जानो, पर न इसी को सब कुछ मानो ।
इससे क्लेश सूक्ष्म हो जायें, पर वे पूर्ण नहीं मिट पायें ।
समय पाय पुनः होंय स्थूल, प्रकृति का यही अटल असूल ।
सूक्ष्म पुनः जिमि उदय न होय, योगी यत्न करे खुद सोय ।

दो०–*फिर वे उदय न हो सकें, यत्न करे तब साध ।
ऐसे साधन वह करे, होय सफल निर्बाध" ।। 4136

पूछा साध "हे नाथ महान, यह भी दो मुझ को अब ज्ञान ।
क्लेश पुनः न जिमि उपजायें, वे साधन सब मुझे बतायें" ।
सुन कर साध की यह सब बात, कहा नाथ ने "सुन लो तात ।
क्लेश की सूक्ष्म वृत्तिन भाई, वे सब होतीं बहु दुखदायी ।
उन के निवारण हेत उपाय, राम प्रभु ने हैं बतलाय ।

---

* ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः (योग दर्शन II.10)

अर्थ –सूक्ष्म हुए क्लेशों का पुनः उदय होने से बचाव किया जा सकता है । पूर्वोक्त पांच क्लेश जो क्रिया योग से सूक्ष्म हो गये हैं, निवृत्त करने योग्य हैं ।

[1] मुख्य उपाय तुम लेवो जान, श्रद्धा सहित प्रभु का ध्यान" ।
पूछा साध ने तब उस काल, "हे नाथ मेरा और सवाल ।
वृत्ति निर्मूल न हो यदि देव, उस का भी बतलाओ भेव ।

दो०-हों निर्मूल क्लेश न, कौन गति हो तात ।
जन्म जन्म में जीव की, यह बतलाओ बात" ॥ 4137

कहा नाथ "यह उत्तम सवाल, सुनो जीव का जो हो हाल ।
जन्म मरण वा सुख दुख जोय, कर्म ही कारण इन का होय ।
जीव के जैसे हों संस्कार, कर्म करे वह उसी प्रकार ।
मन में जो संस्कार अपार, वृत्तियां उन की हैं आधार ।
वृत्तियां होवें जिस प्रकार, उपजें तदनुसार संस्कार ।
[2] हों कर्म संस्कार अनुसार, कर्म का फल है कथा अपार ।
क्लेशों को तुम मूल लो मान, पुनर्जन्म को वृक्ष पहचान ।
जाति, आयु, भोग जो होंय, जान वृक्ष के फल हैं सोय ।

दो०-*जीवन के इस वृक्ष का, क्लेश मूल लो जान ।
जाति आयु सब भोग जो, फल उसके पहचान ॥ 4138

---

[1] ध्यान हेयास्तद् वृत्तयः (योग दर्शन II.11)
अर्थ - क्लेशों की स्थूल वृत्तियां जो क्रियायोग से तनु (सूक्ष्म) कर दी गई हैं, वे सूक्ष्म भी ध्यान द्वारा त्यागने योग्य हैं ।

[2] क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः (योग दर्शन II.12)
अर्थ - क्लेश जिस की जड़ है ऐसे कर्मों की वासना वर्तमान और अगले जन्मों में भोगने योग्य हैं ।

* सति मूलेतद्विपाको जात्यायुर्भोगाः (योग दर्शन II.13)
अर्थ - अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के होते हुवे उस (कर्माशय) का फल जाति आयु और भोग होता है ।

हे साधो तुम को समझाये, क्लेश के रूप दो बतलाये ।
क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो रूप, अपुण्य व पुण्य उनका स्वरूप ।
[1] पुण्य से सुख होत है भाई, अपुण्य तो ले दुख में जाई" ।
साध कहा तब "हे महाराज, बात कथी जो आप ने आज ।
यह उत्साहजनक उपदेश, पुण्यकर्म मैं करूं हमेश ।
अपुण्य कर्म का कर दूं त्याग, जिस से उदय होय मम भाग" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, यहीं तक ही न सारा ज्ञान ।
[2] सुख को न तुम सभी कुछ जानो, परिणाम सुख का दुख हि मानो ।

दो० – पुरुष विवेकी जो भये, सुख में न उलझाय ।
जग में तो उस के लिए, सर्वत्र दुख लखवाय" ॥ 4139

सुनी नाथ की जब यह वाणी, साध कहा "हे सद्गुरु दानी ।
यह तो समझ से बाहिर बात, सुख भी दीखे दुख साक्षात ।
हे नाथ मुझे समझ न आय, सुख में किस विध दुख लखवपाय"।
कहा नाथ "तुम बात लो जान, सुख को अस्थिर ही पहचान ।
आशंका सुखनाश की जोय, यही तो सुख में बाधक होय ।
दुख व ताप नहीं त्यागें लेश, ताप का हो संस्कार विशेष ।
इस विध सुख में दुख आभासत, विवेकी को सुख हि दुख लागत ।
और बात भी इस में भाई, सुनना प्रात काल तुम आई ।

---

[1] ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात् (योग दर्शन II .14)

अर्थ – ये (जन्म, आयु, और भोग) सुख, दुख देने वाले होते हैं । क्योंकि उन का कारण पुण्य और पाप होता है ।

[2] परिणामतापसंस्कारदुखैः गुणवृत्तिविरोधाच्च दुखमेव सर्वं विवेकिनः ।
(योग दर्शन II .15)

अर्थ – क्योंकि (विषय – सुख के भोग काल में भी) परिणाम – दुख, ताप – दुख, संस्कार – दुख बना रहता है । और गुणों के स्वभाव में भी विरोध है । इसलिए विवेकी पुरुष के लिए सब कुछ (सुख भी जो विषय – जन्य है) दुख ही है ।

दो०-आओ प्रातः काल जब, फिर यही कथ पायें ।
विषय गूढ़ है साध जी, शांति से कथ पायें" ॥ 4140

दिन पंदरहवां (प्रातः)

सायं वेला साध सिधाया, उस का चित्त पर था भरमाया ।
सुख दुख की यह उलझन कैसी, कीन श्रवण न जग में ऐसी ।
वह सुलझाने प्रातः आया, बैठ चरणि था नाथ के पाया ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, भाव कौन हैं चित्त तिहारे" ।
कहा साध "तुम अन्तर्यामी, मेरे दिल की जानो स्वामी ।
मेरा मस्तक है भरमाया, सुख को दुख तुम किमि कह पाया।
जग में सभी को सुख अभीष्ट, दुख को समझें सभी अनिष्ठ ।
कर किरपा मुझ को समझायें, इस दुविधा से मुझे बचायें ।

दो०-दुविधा में है मन पड़ा, तव किरपा से नाथ ।
इस दुविधा से नीकसे, ज्ञान लगे मम हाथ" ॥ 4141

कहा नाथ "हे साध ज्ञानी, आप ठीक न बात पहचानी ।
जग की बात भिन्न है भाई, योगी को सब कुछ दुखदायी ।
योगी कर्म वही कर पाये, दुख से पीछा जिमि छुट जाये ।
तीन गुणों से बच कर चाले, निरोध वृत्तिन का कर डाले ।
[1] जिस से दुख न आये पास, भविष्य का योगी को आभास ।
योगी दुख का कारण जाने, कारण का नीवारण जाने" ।
सुनी साध जब नाथ की बात, भया जिज्ञासु कहा उस "तात ।
जिस कारण को योगी जानें, श्री मुख से प्रभु उसे बखानें ।

[1] हेयं दुखमनागतम् (योग दर्शन II.16)
अर्थ -आने वाला दुख त्यागने योग्य (हेय) है ।

दो० - किस कारण का नाथ मम, होय निवारण देव ।
योगी जिस को जानते, मैं जानूं वह भेव" ॥ 4142

कहा नाथ "सुन लो मम तात, मैं कथूं संक्षेप से बात ।
[1] 'द्रष्टा' का 'दृश्य' से संयोग, इसी से पाते दुख सब लोग" ।
कहा साध "नहीं बात स्पष्ट, भ्रांति मेरी भयी नहीं नष्ट ।
'द्रष्टा' और 'दृश्य' क्या होय, नाथ बतलाओ है वह जोय" ।
कहा नाथ "तू पूछा ठीक, करती पृथक इन को इक लीक ।
'द्रष्टा' को लो आत्मा जान, दृश्य को प्रकृति लेवो मान ।
द्रष्टा दृश्य का यह जो मेल, यह रचना इक अद्भुत खेल ।
[2] इस रचना के दो परिणाम, जगति 'भोग' वा 'मोक्ष' का धाम ।

दो० - जगत विधाता ने रचा, भोग वा मुक्ति हेत ।
मानव को इस जन्म में, मुक्ति हो अभिप्रेत ॥ 4143क
भोग योनि उस जीव की, मानव से जो भिन्न ।
रत जो मानव भोग में, विधना उस से खिन्न ॥ 4143ख

और भी सुन लो मेरी बात, स्वरूप जगत का जो है तात ।
भूत पदार्थ प्रभु रच पाय, इन्द्रियों के भी संग समुदाय ।
दृश्य जगत का यह स्वरूप, स्मरण रहे यह ऐसा रूप ।
अब इस का स्वभाव बताऊँ, 'सात्विक' 'राजस' तम' कथ पाऊँ।

---

[1] द्रष्टदृश्यसंयोगो हेयहेतुः (योग दर्शन II .17)
अर्थ - द्रष्ट और दृश्य का संयोग हेय हेतु (दुख का कारण) है ।

[2] प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् । (योग दर्शन II .18)
अर्थ - प्रकाश (सात्विक) क्रिया (राजसिक) और स्थिति (तामसिक) जिसका स्वभाव है, भूत और इन्द्रिय जिस का स्वरूप है, भोग और अपवर्ग जिस का प्रयोजन है वह दृश्य है ।

'प्रकाश' सात्विक लेवो मान, स्वरूप राजस का 'क्रिया' जान ।
'स्थिरता' तम का है संकेत, यही दृश्य के ज्ञान के हेत ।
मैंने तुम को है बतलाया, अब कहो जो समझ है पाया" ।
कहा साध "मैं लीना जान, सभी जगत यह दृश्य महान ।
यहीं मोक्ष व भोग है नाथ, भूत पदार्थ इन्द्रियों साथ ।
सभी जगत यह है भगवान, तीन गुणों की रचन महान ।

दो०-ज्ञान दृश्य का है मिला, 'द्रष्टा' का अब बोध ।
मुझे कराओ नाथ जी, मैं हूं शिष्य अबोध ।। 4144

पर इक संशय मन में आया, तीन गुणों से जग रच पाया ।
सर्वत्र है न एक स्वभाव, पदार्थों में क्यों भेद व भाव ।
करिये इस का भी समाधान, मिले आप से मुझ को ज्ञान" ।
कहा नाथ "तव संशय ठीक, रचना प्रभु की नहीं अलीक ।
तीन गुणों के कर बहु खण्ड, रचा प्रभु ने यह ब्रह्माण्ड ।
[1] हर गुण के हैं चार स्वरूप, उन से रचना भयी अनूप" ।
पूछा साध "हे पूज्य मम देव, यह भी जानना चाहूं भेव ।
चार स्वरूप कौन भगवान, जिन का कीना आप बखान ।
जगत में जो विषमता लायें, अनोखी सृष्टि को रच पायें ।

दो०-अनोखी सृष्टि जो रची, जग के सिरजन हार ।
तीन गुणों के भेद से, उन का समझूं सार" ।। 4145

कहा नाथ "हे साध सुजान, काल प्रातः भया विहान ।
सायं काल जभी चलि आओ, इस का उत्तर तब सुन पाओ" ।

[1] विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि (योग दर्शन II.19)
अर्थ -गुणों की चार अवस्थायें हैं । विशेष, अविशेष, लिंगमात्र और अलिंग ।

दिन पंदरहवां (सायं)

सायं काल साध फिर आया, उस के मन वह भाव समाया ।
तीन गुणों के भिन्न स्वरूप, जिन से जग की रचन अनूप ।
उन का ज्ञान पाने के हेत, प्रश्न किया पा गुरु संकेत ।
"हे नाथ ! मुझ को बतलाओ, तीन गुणों के भेद बताओ" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, चार पर्व प्रति गुण के जान ।
'विशेषाविशेष' दो लो जान, 'लिंगमात्र' 'अलिंग' भी मान ।

दो०–इन्हीं गुणों के भेद से, सृष्टि भयी अपार ।
दो वस्तु नहीं एक सम, मन में लेवो धार ।। 4146क
अधिक मात्रा में गुण जब, वह 'विशेष' लो मान ।
अल्प मात्रा में हो जब, 'अविशेष' लो जान ।। 4146ख
केवल गुण का चिन्ह हो, 'लिंग' मात्र वह होय ।
चिह्न भी यदि न भासता, हो 'अलिंग' वह सोय ।। 4146ग
कहीं सृष्टि में वस्तु न, तीन गुणों से हीन ।
इन पर्वों के भेद से, स्वरूप भेद हि चीन ।। 4146घ

सात्विक वस्तु में सत्व विशेष, राजस मध्य गुण रज अशेष ।
तामसिक वस्तु जो भी होय, तम से पूर्ण वह जानो सोय ।
[1] अन्य गुण वहां हों 'अविशेष', 'लिंगमात्र' 'अलिंग' वा लेश" ।

---

[1] 'सात्विक' वस्तु में सत्वगुण विशेष होगा और अन्य गुण जैसे रजोगुण और तमोगुण अविशेष, लिंगमात्र अथवा अलिंग रूप में ही विद्यमान होंगे ।
इसी प्रकार 'राजस' वस्तु में रजोगुण विशेष और अन्य गुण अविशेष, लिंगमात्र अथवा अलिंग रूप में ही विद्यमान होंगे ।
'तामस' वस्तु में तमोगुण विशेष और अन्य गुण अविशेष, लिंगमात्र अथवा अलिंग रूप में ही होंगे ।

सुनी साध ने सद्गुरु वाणी, कहन लगा "हे जग कल्याणी ।
स्पष्ट भया है 'दृश्य' स्वरूप, द्रष्टा का बतलाओ रूप ।
'द्रष्टा' 'दृश्य' का संग भगवान, अनादि काल से कहें सुजान ।
इस का जो रहस्य हो देव, उस का भी बतलाओ भेव" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, प्रथम द्रष्टा का दूं मैं ज्ञान ।
'पुरुष' ही द्रष्टा है मम मीत, दर्शन की शक्ति उसमें चीत ।

दो०-*द्रष्टा का गुण जान लो, देखन हार पुमान ।
परम शुद्ध वह साध जी, उस सम और न मान" ॥ 4147

चौंका साध सुन कर यह बात, कहन लगा "हे सद्गुरु तात ।
सभी जीवों में द्रष्टा एक, शुद्धता में न फर्क है नेक ।
भिन्न भिन्न दृष्टि है क्यों नाथ, यह बतला कर करें सनाथ" ।
कहा नाथ "तुम पूछा ठीक, मिली द्रष्टा को मन की लीक ।
मन के माध्यम से वह देखे, वृत्तिन के स्वरूप ही पेखे ।
आंख का शीशा जैसा होय, दीखे द्रष्टा को दृश्य सोय ।
है क्या तुमने लीना जान, द्रष्टा का स्वरूप पहचान ।
यह भी बात रहे तव चेत, रचना दृश्य की द्रष्टा हेत ।

दो०-द्रष्टा के ही हेत हो, सभी दृश्य लो चीत ।
देखन वाले के बिना, क्यों नाटक हो मीत" ॥ 4148

*द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः (योग दर्शन II .20)
अर्थ -द्रष्टा जो देखने की शक्ति मात्र है, निर्विकार होता हुआ भी, चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है ।
The Soul is the seer of the pictures in the mind.

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा (योग दर्शन II .21)
अर्थ -उस पुरुष के लिए ही (यह सारा) दृश्य का रूवरूप है ।
The Knowledge of the knowable exists for the sake of the soul.

कहा साध "मैं धन्य हो पाया, ज्ञान गूढ़ जो है समझाया ।
सारी बात है मन समायी, एक बात पर समझ न आयी ।
'द्रष्टा' गण जब उठकर जाय, नाटक का अवसान हो पाय ।
क्या 'दृश्य' का हो यही हवाल, 'द्रष्टा' के संग मिटती चाल" ।
सुन कर साध की यह जिज्ञास, कहा नाथ ला मुख पै हास ।
"नाटक से जब उठ जन जाय, उस हेत वह नहीं रह पाय ।
अन्य जनता उस के रस लीन, इस से तुम लो ज्ञान को चीन ।
कृतार्थ भये जब योगी साध, दृश्य से मुक्त भये निर्बाध ।
उस को दृश्य का भास न होय, निज अनुभव को जाने सोय ।

दो० – *कृतार्थ जन के हेत ही, हो दृश्य का हान ।
अन्य जनों के हेत तो, है दृश्य वर्तमान" ॥ 4149

बोला साध "जगत कल्याणी, ज्ञान सम्पूर्ण तेरी वाणी ।
संशय दूर भया है नाथ, आज भया यह दास सनाथ ।
उलझन मेरी भयी है दूर, ज्ञान मिला है गूढ़ जरूर ।
पर इक प्रश्न और है नाथ, जो संबंधित इस के साथ ।
संयोग जो द्रष्टा दृश्य का होय, कारण क्या बतलाओ सोय ।
बंधन का जो हेतु हो नाथ, वही बतला कर करें सनाथ" ।
कहा नाथ "है प्रश्न यह खास, सुनो बात मम सह विश्वास ।

---

* कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् (योग दर्शन II .22)

अर्थ – जिस का प्रयोजन सिद्ध हो गया है अन्य के लिए यह दृश्य नष्ट हुआ भी नष्ट नहीं होता है, क्योंकि वह दूसरे पुरुषों के साथ सांझे की वस्तु है ।

In the state of mukti there exists no knowable for the soul. Though to the perfect soul there is no knowable yet it does not mean that the knowable ceases to exist. It exists with regard to the other souls that have not reached perfection.

दो०-[1] देह मिला है जीव को, हो आत्म उद्धार ।
बिना पड़े इस चक्र में, मोक्ष न दे करतार ॥ 4150

संक्षेप से मैं है बताया, सायं वेला अब हो आया ।
कल प्रातः जभी चलि आओ, तभी और ज्ञान को पाओ" ।
कह इतना स्वामी उठ पाये, तब वे अपने कक्ष सिधाये ।

दिन सोलहवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, कर प्रणाम बैठ वह पाया ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, अभी मिला नहीं पूरा ज्ञान ।
बंधन का जो असली कारण, और होता है जिमि निवारण ।
वही तुझे मैं अब बतलाऊँ, बात रहस्य की सब सुझाऊँ ।
अविद्या बंधन हेतु भाई, जिस की व्यापक है प्रभुताई ।

दो०-[2] अविद्या के ही कारण, है बंधन में जीव ।
बंधन में वह किमि पड़ा, समस्या यह अजीब" ॥ 4151

---

[1] स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः (योग दर्शन II .23)
अर्थ -स्वशक्ति और स्वामिशक्ति (दृश्य और द्रष्टा का) संयोग इन दोनों के स्वरूप की उपलब्धि के हेतु है ।

A question is often asked : If the ultimate goal is the separation of self from non-self, then why was this conjunction between the two brought about ? why was self tied to non-self?

The answer to this is : In order that man (self) may perfect his nature by acquiring all experiences by passing through them ; unless the man learns all that the matter has to teach, the conjunction is not broken.

What is the effective cause of this conjunction ? The answer to this is in the next Sutra.

[2] तस्य हेतुरविद्या (योग दर्शन II .24)
अर्थ -इस अदर्शन रूपी संयोग का कारण अविद्या है ।

नाथ का सुन कर यह उपदेश, साध कहा "हे मम हृदयेश ।
अविद्या क्या शक्ति है नाथ, सर्वज्ञ जीव बंधा जिस हाथ ।
रूप उसी का जानन चाहूं, निज मन दुविधा ग्रस्त लखाऊं" ।
कहा नाथ "सुन साध सुजान, इस रहस्य को गूढ़ लो मान ।
अविद्या अनादि शक्ति भाई, सकल विश्व में है प्रभुताई ।
यह जीव की सहचरी जानो, संग सदैव लगी ही मानो ।
इसी में सकल विश्व का वास, विरला समझे रहस्य यह खास ।
इस से अछूता इक ही जान, 'ईश्वर' जिस का है अभिधान ।

दो०-ईश्वर बिन सब विश्व है, लिप्त अविद्या बीच ।
इस ज्ञान को समझते, बुद्धिमान समीच" ।। 4152

कहा साध "हे सद्गुरुदेव, सकल अविद्या का यह भेव ।
मेरी बुद्धि में नहीं आवे, अति सूक्ष्म यह ज्ञान लखावे ।
नाथ करें यह बात स्पष्ट, जिस विध मेरी भ्रांति हो नष्ट" ।
देख साध की यह कठिनाई, कहा नाथ "सुन मेरे भाई ।
स्थूल से सूक्ष्म मैं समझाऊँ, स्पष्ट भाव निज जिमि कर पाऊँ।
अविद्या अंधकार सम जान, दोनों को ही शाश्वत मान ।
दोनों का स्वभाव है एक, भ्रांत करें वे जन प्रत्येक ।
अंधकार में भटकत राही, भूला भटका रहे सदा ही ।

दो०-पथ पथिक को नहीं मिलत, बिना किरण प्रकाश ।
जीव रहत जग भटकता, बिना अविद्या नाश ।। 4153क
जो जन्मा इस जगत में, पड़े अविद्या कूप ।
उसे निकासे सद्गुरु, जो योगिन के भूप ।। 4153ख

[1] जो योगिन के भूप गुरु, करें अविद्या नाश ।
अविद्या के अभाव से, हो 'संयोग' विनाश ।। 4153ग
[2] 'संयोग' के विनाश से, जन मुक्त हो जाय ।
कारण इस का जानिये, 'विवेक' गुरु से पाय ।। 4153घ
विवेक ऐसा मिलत है, सौ फीसद जो शुद्ध ।
बस यह उपाय मोक्ष का, कथा पतंजल बुद्ध" ।। 4153ङ

सुन कर नाथ का विशद ज्ञान, कहा साध "हे गुरु भगवान ।
प्रश्न का मैं अब उत्तर पाय, समझूं आप की महती दाय ।
पर अब बात इक पूछूं नाथ, उत्तर दे कर करें सनाथ ।
गुरु से जन विवेक है पाता, और मुक्त वह तब हो जाता ।
क्या यह झटपट ऐसा होय, या हो दीर्घ काल में सोय" ।
साध की सुन कर यह जिज्ञास, लायी नाथ जी मुख पै हास ।
और कहा "हे साध प्यारे, खुलें न सब को मोक्ष द्वारे ।
[3] 'सप्तभूमि' जभी लंघ पाय, तभी 'विवेक' उसे मिल पाय ।
'प्रज्ञा' की वे भूमियां जान, इक से इक बढ़ शुद्ध पहचान ।

दो०- 'सप्तभूमि' को लांघ कर, होय 'प्रज्ञा' सोय ।
इतना सुगम न जानिये, हर इक जन जो गोय" ।। 4154

---

[1] तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् (योग दर्शन II .25)
अर्थ - उस (अविद्या) के अभाव से संयोग का अभाव (हान) है । वह द्रष्टा का कैवल्य है।

[2] विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः (योग दर्शन II .26)
अर्थ - अविप्लव (शुद्ध) विवेकख्याति हान (संयोग के अभाव) का उपाय है ।

[3] तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा (योग दर्शन II .27)
अर्थ - उस निर्मल विवेक ख्याति वाले योगी की सात प्रकार की सब से ऊँची अवस्था वाली प्रज्ञा होती है ।

कहा साध "हे गुरु महाराज, हो स्पष्ट मुझे ज्ञान यह आज ।
'सप्तभूमि' का दीजो ज्ञान, पार करें किमि वे भगवान ।
इतनी दुर्गम मोक्ष की राह, गुरु बिन मिले न उस की थाह" ।
[1] कहा नाथ "हे साध सुजान, भूल गये हो तुम वह ज्ञान ।
'भूमिन' का जो दीन उपदेश, क्या तुम्हें वह स्मरण न लेश ।
पूर्व ज्ञान जो शिष्य भुलाय, कैसे ज्ञान वह गुरु से पाय" ।
भयी साध को बहुत ग्लानी, उस कहा फिर "हे महादानी ।
परम अज्ञ हूं शिष्य नकारा, मिला ज्ञान जिस भूला सारा ।

दो० – पुनः कहें हे नाथ जी, भूमिन का प्रसंग ।
भूलूंगा न ज्ञान वह, रारवूं बुद्धि संग" ।। 4155

कही नाथ भयी देर है अब, सायं काल तुम आओ जब ।
यह ज्ञान फिर मुझ से पाओ, नित्य कर्म हित अब चलि जाओ" ।

दिन सोलहवां (सायं)

सायं काल साध चलि आया, स्वामी जी ने तब कह पाया ।
"हे साध सुन भूमिन के नाम, जिन बिन साधन हों निष्काम ।
*प्रथम 'शुभेच्छा' है मम भाई, दूज 'विचारणा' थी बताई ।

---

[1] देखो दोहा संख्या 4080 – 4081

* 1. शुभेच्छा – सांसारिक भ्रम जाल के प्रति मन में ग्लानि, शास्त्रों को जानने की इच्छा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृति ।
2. विचारणा – वैराग्य और अभ्यास पूर्वक मन में सदाचरण की प्रवृति की उत्पत्ति ।
3. तनुमानसी – विषय भोगों के प्रति आकर्षण का अभाव ।
4. सत्वापत्ति – अन्तःकरण के राग – द्वेष आदि मल का नष्ट हो जाना । चित्त का विषयों से पूर्ण विराग तथा शुद्ध सत्व स्वरूप में उसका अवस्थित हो जान ।
5. असंसक्ति – पूर्ण संसर्ग हीन हो शुद्ध सत्त्वस्वरूप में दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो जाना ।
6. पदार्थाभावना – आन्तरिक तथा बाह्य पदार्थों की भावना का नाश, आत्मा में ही रमण करना ।
7. तुर्यगा – भेद बुद्धि का नाश, समदर्शी हो जाना, आत्मस्वरूप में एकनिष्ठ हो जाना ।

तीसरी 'तनुमानसी' जान, चौथी 'सत्वापत्ति' लो मान ।
'असंसक्ति' है पंचम भाई, छटी 'पदार्थाभावना' आई ।
'तुर्यगा' सप्तम है अभिराम, सातों के तुम सिमरो नाम ।
सातों भूमियां लांघ दिखाय, 'विवेकी प्रज्ञा' तब जन पाय ।

दो०-मोक्ष लाभ तब ही भये, होय विवेकी बुद्ध ।
सब भूमिन को पार कर, हो अन्तर जब शुद्ध" ॥ 4156

सुना साध ने गुरु उपदेश, और कहा "हे मम हृदयेश ।
सात भूमिन के सुन कर नाम, स्मरण भये हैं सुख के धाम ।
इन भूमिन को करना पार, मैं समझूं है बहु दुश्वार ।
ऐसा मार्ग कोई बतायें, पार होने की विधि सुझायें" ।
विनय साध ने जब कर पाई, स्वामी जी तब बात बताई ।
"हे साध प्रभु राम हैं आय, योग शिक्षा जग को दे पाय ।
योग कठिन को सरल बताया, वन से योग बस्तिन में लाया ।
राम प्रभु का यह उपकार, स्मरण रहे जब तक संसार ।

दो०-राम प्रभु ने जगत को, कहा कठिन न योग ।
सरल मार्ग है योग का, त्यागे जन जब भोग" ॥4157क
कहा साध "हे सद्गुरो, मुझे बतायें देव ।
वह शिक्षा जो राम ने, दीन जगत अधिदेव" ॥4157ख
कहा नाथ "हे साध जी, नवीन बात न कोय ।
ऋषियन का उपदेश जो, राम बताया सोय ॥4157ग
आठ अंग जो योग के, अपनाये जो मीत ।
सप्तभूमि को पार कर, होय विवेकी चीत ॥4157घ

[1] आठों अंग योग के साधे, अशुद्धि न उस चित्त को बाधे ।
ज्ञान उजाला होय मन बीच, विवेकी वह जन बने समीच" ।
साध सुनी जब गुरु की वाणी, कहन लगा "हे गुरु सन्मानी ।
आठ अंग जो हैं कथ पाये, उन का ज्ञान मुझे मिल पाये ।
मैं भी उन को लेवूं साध, कृपा करें न होय कुछ बाध" ।
कहा नाथ "उन को लो जान, उन के नाम मैं करूं बखान ।
[2] 'यम' 'नियम' अंग दो हैं भाई, 'आसन' भी प्रसिद्ध जगताई ।
चौथा अंग है 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार' पंचम का नाम ।
'धारणा' छटे को कह पायें, आगे 'ध्यान' 'समाधि' कहायें ।

दो० – आठ अंग ये योग के, लो इन्हें आराध ।
इन अंगों को पाल कर, सिद्ध भये जन साध" ॥ 4158

बोला साध "हे दीना नाथ, इन के भाव बतावें साथ ।
किस विध हम इन्हें आराधें, और योग को कैसे साधें" ।
नाथ कहा "हे साध प्यारे, सुनो ध्यान से वचन हमारे ।
'यम' का करेंगे प्रथम बखान, उस के पांच भेद लो जान ।
उन पांचों को रखना याद, अगले अंग कथें हम बाद ।
[3] 'यम' के पांच हैं भेद महान, सत्य व अहिंसा दो पहचान ।

---

[1] योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः (योग दर्शन II .28)
अर्थ – योग के अंगों के अनुष्ठान से अशुद्धि के नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति पर्यंत हो जाता है ।

[2] यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि । (योग दर्शन II .29)
अर्थ – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि (ये) आठ योग के अंग हैं ।

[3] अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (योग दर्शन II .30)
अर्थ – अहिंसा, सत्य,अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम हैं ।

तीसरा अस्तेय अपनायें, चौथा ब्रह्मचर्य कथ पायें ।
अपरिग्रह है पांचवां 'यम', पालिये इन को मार के दम ।

दो०-[1] पांचों यम हैं ये कथे, महत्व इन का जान ।
सार्वभौम ये जान लो, ऐसे व्रत महान ।। 4159

सभी समयों में लागू जान, देश काल का भेद न मान ।
मानव मात्र में इन का मान, जातियां सभी करें सन्मान" ।
कहा साध "हे सद्गुरु देव, 'यम' का मैंने जाना भेव ।
होत 'नियम' क्या हे भगवान, उस का भी अब करें बखान" ।
स्वामी बोले "हे मम मीत, 'नियम' भी लो पांच ही चीत ।
उन के नाम मैं करूं बखान, 'शौच' 'संतोष' दो लो जान ।
'तप' 'स्वाध्याय' और दो मान, पंचम 'ईश्वर का प्रणिधान' ।
इन पर चालें योगी भाई, जीवन में ये बहु सुखदाई ।

दो०-पांच नियम जो पालता, योगी बने पुमान ।
हे साधो तुम जान लो, इन बिन न कल्याण ।। 4160क
कल प्रात फिर आय कर, सुननी आगे बात ।
आठ अंग जो योग के, उन बिन योग न तात" ।। 4160ख

दिन सत्रहवां (प्रातः)

भोर भई तब सद्गुरु जागे, पक्षी गण चहचहाने लागे ।
आश्रम का जो भव्य प्रांगन, आ बैठे वहां साधक गण ।

[1] जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महा तम् (योग दर्शन II.31)
अर्थ - जाति, देश, काल और समय की हद से रहित सर्वभूमियों में पालन करने योग्य 'यम' महाव्रत कहलाते हैं ।

साधु भी तभी चल कर आया, आ कर नाथ को सिर झुकाया ।
उसके चित्त में जो सवाल, उस ने पूछ लिया उस काल ।
"क्षमा करो मम धृष्टता नाथ, कहूं प्रश्न इक बैठ सब साथ ।
अहिंसा आदि 'यम' बतलाये, उन पर चल न कोई दिखाये ।
तर्क वितर्क सभी कर पायें, असंभव चलना हि कथ पायें ।
अहिंसा पर न को चल पाये, सत्य का मग न को अपनाये ।
अस्तेय जगत में दिख न पाये, ब्रह्मचारी न को रह पाये ।
अपरिग्रह न कहीं जग माहीं, राज्य लोभ का ही सब थाहीं ।

दो०–इस विध करते सब तर्क, डोले जन का चित्त ।
यम नियम न पाल सके, रह जगत में नित्त" ॥ 416॥

सुन कर साध की ऐसी बात, कहा नाथ "हे सुन लो तात ।
जग का तर्क न योगी माने, वह तो सदा शास्त्र सन्माने ।
[1] वितर्क का बाधा जब समक्ष, मन में भाव लाये 'प्रतिपक्ष" ।
पूछा साध "हे सद्गुरु देव, स्पष्ट करें 'प्रतिपक्ष' का भेव ।
वह क्या होता मेरे नाथ, जो योगी को करत सनाथ ।
बोले नाथ "तुझे बतलाऊँ, 'प्रतिपक्ष भाव' मैं समझाऊँ ।
हिंसा असत्य आदि बेअन्त, उनमें दुख अज्ञान अनन्त ।
लोभ क्रोध उन के हैं मूल, चुभें जीव के अन्तर शूल ।
योगि जन करें सदा विचार, भ्रांति से लेंय चित्त निकार ।
यही 'प्रतिपक्ष भावना' साध, यह समझ तू योग आराध ।

[1] वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् (योग दर्शन II .33)
अर्थ –वितर्कों द्वारा यम और नियमों का बाध होने पर प्रतिपक्ष का चिन्तन करना चाहिए।

दो०-[1] एक बात अब और भी, लो जान मम मीत ।
हिंसादि के भेद भिन्न, समझो तुम सप्रीत" ।। 4162

बोला साध "हे सद्गुरु देव, 'प्रतिपक्ष' का मैं समझा भेव ।
हिंसादि के भिन्न जो रूप, उन के होते कौन स्वरूप ।
कर किरपा मुझ को बतलायें, मम जिज्ञासा शांत करायें" ।
कहा नाथ "मैं सब समझाऊँ, तीन भेद उन के कथ पाऊँ ।
स्वयं किये को एक लो जान, करावे अन्य से दूजा मान ।
जो अनुमोदन को कर पाये, उस का तीजा भेद कहाये ।
योगी सदैव बच कर चाले, हिंसक के भी संग न लागे ।
हिंसा का अनुमोदक भाई, वह भी दोष से बच न पाई ।

दो०-[2] 'कृत' 'कारित' अनुमोदिता', इस विध तीनों भेद ।
हैं परम दुखदायी वे, दें जन को बहु खेद" ।। 4163

बोला साध "मैं रहूं सतर्क, फांद सके नहीं मुझे वितर्क ।
सदा करो मुझ पर यह दाया, दूर रहे वितर्क की छाया" ।
कहा नाथ "तुम समझा ठीक, सूक्ष्म पर इस सबन की लीक ।

---

[1] वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष भावनम् (योग दर्शन II.34)
अर्थ – यम नियमों के विरोधी हिंसा आदि 'वितर्क' कहलाते हैं । (वे तीन प्रकार के होते हैं) स्वयं किये हुये, दूसरों से कराये हुये, और अनुमोदन किये हुए । उनके कारण लोभ, क्रोध और मोह होते हैं । वे मृदु, मध्यम और अधिमात्रा वाले होते हैं । ये सब दुख और अज्ञान रूपी अपरिमित फलों को देने वाले हैं । इस प्रकार प्रतिपक्ष की भावना करें।

[2] हिंसा स्वयं करनी (कृत); अथवा स्वयं न कर किसी के द्वारा हिंसा करवानी (कारित); या कोई हिंसा करे तो उसका पक्ष लेकर अनुमोदन करना (अनुमोदिता) – ये तीनों ही हिंसा के भेद हैं । इसी प्रकार चोरी आदि के भी यही भेद होते हैं ।

इन दोषों का रूप लो जान, 'मृदु' 'मध्य' 'अधिमात्र' पहचान ।
'अधिमात्र' दिख सदा ही पाये, 'मध्य' भी कुछ नजर में आये ।
'मृदु' का तो भास नहीं होय, दुखदायी पर होता सोय ।
इस कारण जन रहे सतर्क, बाधे न कभी उसे वितर्क ।
हिंसा आदि वितर्क हे साध, इन के दोष रहें तुझे याद ।

दो० - प्रतिपक्ष की हि भावना, तुझे बचावे साध ।
यम नियमों पर चल सको, इस विध तुम निर्बाध" ॥ 4164क
पूछ लिया तब साध ने, "हे योगेश्वर देव ।
प्रतिपक्ष का यह साधन, सूक्ष्म जिसके भेव ॥ 4164ख

इस को तो वह ही कर पावे, जग का जो विरोध सह पावे ।
जन विरोध को सह ही पावे, प्रत्यक्ष लाभ यदि दिख पावे ।
यम नियमों पर चल कर नाथ, हों जो लाभ कहें इस साथ" ।
कहा नाथ "तव बात है ठीक, लाभ देख मन चले उस लीक ।
सुन लो लाभ जो जन कमावे, यम नियमों पर जब चल पावे ।
नियमादि जब सिद्ध हो जायें, दिव्य लाभ उन से मिल पायें ।
उन लाभों का करूं बखान, प्रथम लो 'अहिंसा' को हि जान ।
[1] अहिंसा में प्रतिष्ठा लाये, मित्र उसका विश्व बन पाये ।

दो० - देव व मानव मीत हों, पशु भी होंवे मीत ।
जभी अहिंसा सिद्ध हो, सब की उस से प्रीत ॥ 4165

सायं को जब आवो तात, इसी विषय पर करेंगे बात" ।

---

[1] अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः (योग दर्शन II .35)
अर्थ - अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस (अहिंसक योगी) के निकट सब प्राणियों का वैर छूट जाता है ।

स्वामी ऐसा कह उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।
साधु तभी उठ कर चल पाया, "शीघ्र मुडूं" मन में कह पाया ।

दिन सत्रहवां (सायं)

सायं भयी साध आ बैठा, गुरु प्रतीक्षा में वह पैठा ।
उसके चित्त विशेष जिज्ञास, सुनूं अहिंसा के गुण खास ।
आय नाथ जी आसन लीना, साधु ने तब दण्डवत कीना ।
स्वामी जी ने आशिष दीनी, विनती साध नाथ से कीनी ।
"अहिंसक के सब होवें मीत, बात बसे नहीं यह मम चीत ।
इसका कारण क्या भगवान, और को इस का है प्रमाण ।

दो०-सुनूं सभी मैं आप से, अहिंसा का प्रभाव ।
पालूं मैं इस 'नेम को', मेरे मन यह भाव" ।। 4166

कहा नाथ "हे साध सुजान, मन का है इक यह विज्ञान ।
मन ही मन का साक्षी होय, यह तो बात कहे हर कोय ।
हिंसा हिंसा को उपजाती, दया दया को है प्रकटाती ।
हिंसक सिंह महाभयदायी, योगी दर बिल्ली बन जायी ।
इस का तो प्रत्यक्ष प्रमाण, देखा राम सद्गुरु दर आन ।
सुमेरु पर जब राम पधारे, महाप्रभु तभी पास बिठारे ।
शेर भी इक आ बैठा पास, जैसे मीत हो प्रभु का खास ।
उन दोनों की प्रीति ऐसी, मित्र की हो मीत से जैसी ।

दो०-पाले अहिंसक व्रत को, और होय जब सिद्ध ।
सकल जगत का मीत वह, शास्त्रन में प्रसिद्ध" ।। 4167क
कहा साध "हे नाथ मम, मिला मुझे प्रमाण ।
बात आपकी सत्य है, अहिंसक व्रत महान ।। 4167ख

अब मुझे प्रभो आप बतायें, 'सत्य' के व्रत का गुण सुनायें" ।
बोले नाथ "हे साधु भाई, बात तुझे है समझ में आई ।
बात 'सत्य' की अब कथ पायें, और उस का प्रभाव बतायें ।
[1] सत्य की होय अंत में जीत, और असत्य की माट पलीत ।
सत्य का पथ न योगी त्यागे, केवल सत्य के ही पथ लागे ।
सिद्ध संकल्प पुरुष हो जाय, वाक न उसका अन्यथा जाय ।
वर देने को होय सामर्थ्य, सत्य की साध न जाय व्यर्थ ।
इस का साक्षी है इतिहास, योगी की तो सत्य ही रास ।

दो० – सत्य सिरफ आधार है, योगी का मम मीत ।
सत ही उस की शक्ति है, बिन न सत्य प्रतीत" ॥ 4168

सुन साध सब नाथ की वाणी, लागा कहन "हे परम ज्ञानी ।
जो कुछ अब मैं सुन हूं पाया, मेरे मन में सकल समाया ।
गुण अहिंसा सत्य का जाना, योगी का तो यही खजाना ।
उसे न धन से कुछ सरोकार, यौगिक जीवन उसे दरकार" ।
सुनी साध की बात जब सत्य, वास्तव में था जिस में तथ्य ।
नाथ बोले "हे साध सुजान, तुझे बतलाऊँ गुप्त ज्ञान ।
धन बिना कोइ काम न चाले, योगी कभी न धन संभाले ।
सब धन योगी का हो जाये, तोट न उसे लेश भी आये ।

दो० – [2] त्यागे जन जब लोभ को, 'अस्तेय' ले धार ।
उस पर हो विश्वास तब, मिलता जो दरकार ॥ 4169

---

[1] सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् (योग दर्शन II .36)
अर्थ – सत्य में दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस सत्य प्रतिष्ठ योगी की वाणी) क्रियाफल का आश्रय बनती है ।

[2] अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् (योग दर्शन II .37)
अर्थ – अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है ।

अस्तेय का लो गुण पहचान, करिश्मा योगी का यह जान ।
उस पे सब का हो विश्वास, बिन संकोच देवें धन खास" ।
कहा साध "भयी बात स्पष्ट, धन बिन योगी को नहीं कष्ट ।
हे नाथ अब यह बतलायें, ब्रह्मचर्य का गुण समझायें ।
उस के गुण पै हो विश्वास, वितर्क सके नहीं कर हताश" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊं, ब्रह्मचर्य समव्रत न पाऊं ।
[1]ब्रह्मचर्य से वीर्य का लाभ, जिस से अमित बने जन आभ ।
बलशाली वह जन हो जाये, विकसित बुद्धि बहुत हो पाये ।

दो०- ब्रह्मचर्य को जान लो, शक्ति का आधार ।
मत भूलो तुम साध जी, इस बिन योग निसार ।। 4170

हे साध अब तुम चलि जाओ, लौट प्रातः फिर जब आओ ।
'अपरिग्रह' का लाभ बताऊं, अलौकिक उसका गुण जताऊं" ।

दिन अठारहवां (प्रातः)

प्रातः भयी साध चलि आया, आकर नाथ को सिर झुकाया ।
और कहा " हे नाथ महान, अलौकिक है क्या वह विज्ञान ।
जिस का था संकेत कर पाय, 'अपरिग्रह' इमि नाम बताय ।
वह अलौकिक ज्ञान बतायें, आस्था योग में मम दृढ़ायें ।
वितर्क न बाधक हो तब नाथ, दास भये तव सदा सनाथ" ।
सुन कर साध की दृढ़ जिज्ञास, कहा नाथ जी ला मुख हास ।
"अपरिग्रह' वह साधन भाई, जिस की तुलना कहीं न आई ।

[1] ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः (योग दर्शन II .38)
अर्थ - ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति होने पर वीर्य का लाभ होता है ।

दो० – [1] 'अपरिग्रह' जब सिद्ध हो, भ्रांति रहे न लेश ।
पूर्व जन्म की गाथ का, मिलता ज्ञान निशेष" ।। 4171

साध चित्त तब भयी जिज्ञास, कहन लगा "किमि हो विश्वास ।
ऐसा ज्ञान जीव पा जाये, पूर्व जन्म जो सन्मुख आये ।
स्पष्ट बात मुझ को बतलायें, 'अपरिग्रह' का रहस जतायें" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, 'अपरिग्रह' का महत्व महान ।
इस का पालन वह कर पाये, चार यम जो सिद्ध कर पाये ।
अहिंसा में जो हो प्रतिष्ठ, और सत्य में होवे निष्ठ ।
अस्तेय गुण जिस में हो साध, और ले ब्रह्मचर्य आराध ।
'अपरिग्रह' का वह अधिकारी, उस की महिमा जानो भारी ।

दो० – 'अपरिग्रह' की महिम को, समझे विरला साध ।
परम कठिन है साधना, सकें न सब आराध" ।। 4172

कहा साध "हे गुरु महाराज, अनोखी बात सुनी है आज ।
अपरिग्रह को कीन स्पष्ट, भ्रांति मम सब होवे नष्ट ।
परिग्रह क्या होता ,नाथ, जिसे त्याग जन बनत सनाथ ।
जन्म जन्म की बात ले जान, अलौकिक इक है जो विज्ञान ।
कर कृपा मुझ को समझायें, मम जिज्ञास तृप्त कर पायें" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, चक्र चौरासी को पहचान ।
[2] 'पुरुष' 'परिग्रह' बोझ उठाय, चक्र चौरासी सदा लगाय ।

---

[1] अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधा (योग दर्शन II .39)

अर्थ – अपरिग्रह की स्थिरता में जन्म के कैसे पन का साक्षात्कार होता है, अर्थात इससे पूर्व जन्म क्या था वा कैसा था, कहां था, यह जन्म किस कारण हुआ, आगे का जन्म कैसा होगा – इत्यादि जन्म जन्मांतर के विषय का बोध होता है ।

[2] भाव यह है कि आत्मा (पुरुष) पञ्चतत्व निर्मित देहों के बोझ को चौरासी के चक्र में ले घूमता है । और माया रूपी धूल उस पर पड़ती रहती है ।

इसी चक्र में निज को भूल, स्वीकार करत चक्र की धूल ।
मोह परिग्रह का लो जान, जिस कारण है यह अज्ञान ।

दो०-इस अज्ञान के कारण, रहे न कुछ भी याद ।
भूल जाय निज की दशा, प्रति जन्म के बाद" ॥ 4173

कहा साध "मुझ को बतलायें, परिग्रह का स्वरूप जतायें ।
जिस से होता सकल अनर्थ, सर्वज्ञ पुरुष का ज्ञान व्यर्थ" ।
कहा नाथ "मैं अब बतलाऊं, परिग्रह का स्वरूप जताऊं ।
प्रथम रूप यह तन ही जान, स्वीकारा खुद पुरुष ने आन ।
बंध गया उस में आ जीव, है बंधन यह बड़ा अजीब ।
उस के मोह घिरा यह भाई, पूर्व स्मृति रही नहीं राई ।
अपरिग्रही जन वही कहाय, तन का मोह जो त्याग दिखाय" ।
कहा साध "हे दीन दयाल, सन्मुख मम यह कठिन सवाल ।

दो०-तन से ममता त्यागनी, लगे असंभाव देव ।
निर्मोही जिमि बन सकूं, कृपा करें अधिदेव" ॥ 4174

[1]कहा नाथ "इस मोह को जान, अविद्या का स्वरूप पहचान ।
अविद्या का जहां दृढ़ स्थान, परिग्रही वह पुरुष पहचान ।
'पर वैराग्य' जिस जन में होय, छूट सके इस मोह से सोय ।
अब मैं तुम को और बताऊं, अन्य 'परिग्रह' मैं कथ पाऊं ।
मन भी परिग्रह का स्वरूप, रहता तन में सदा जो गूप ।
मन से जब तक नात न टूटे, जीव न तब तक कैद से छूटे ।
मन जीव को सदा भरमाये, चैन न उस को दे वह पाये ।
यही लो हाल बुद्धि का जान, जीव को भ्रांत करत लो मान ।

[1]शरीर का मोह 'अभिनिवेश' क्लेश है, जो अविद्या से उपजता है ।

दो०-तन को विग्रह जानिये, मन को भी लो मान ।
बुद्धि भी होय विग्रह, सबन 'उपाधिन' जान ।। 4175क
सबन 'उपाधिन' से जभी, हो विरक्त इन्सान ।
रह अपने ही रूप में, ले जन्मों को जान" ।। 4175ख

सुना नाथ का गूढ़ उपदेश, कहा साध ने "हे हृदयेश ।
अपरिग्रह का पाया ज्ञान, और ज्ञान दो हे भगवान" ।
कहा नाथ "जब सायं आओ, अगली बात तभी सुन पाओ" ।

दिन अठारहवां (सायं)

सायं को जभी साधु आया, और उस चरणि शीश झुकाया ।
[1] कहा नाथ "हे साध सुजान, मैं अब शौच का करूं बखान ।
कहा साध "हे सद्गुरु देव, शौच का तो मैं जानूं भेव ।
मनुष्य करे जब निज को शुद्ध, शौच कहें तभी उसे प्रबुद्ध ।
तन ही योग का है आधार, आप से श्रवण किया बहु बार ।

दो०-शुद्ध करे जो देह को, स्वस्थ रहे वह खास ।
स्वस्थ पुरुष ही कर सके, सभी योग अभ्यास" ।। 4176

कहा नाथ "तुम सच अनुमाना, श्रवण करो जो शास्त्र बखाना ।
यहां देह की बात न मीत, 'वृत्तिन' की ही बात लो चीत ।
वृत्ति शुद्ध तब ही हो पाय, आत्मचिन्तन में समय बिताय ।

---

[1] शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः (योग दर्शन II.40)

अर्थ -शौच से अपने अंगों के प्रति घृणा होती है, (गुप्=निन्दा करना) और दूसरों से संसर्ग का अभाव होता है ।

अन्यार्थ -शौच (शुद्धता) से अपने अंगों की रक्षा होती है (गुप्=बचाना) और दूसरों से संसर्ग का अभाव होने से (छूत के रोगों से) मुक्ति मिलती है ।

तन की चिन्ता जिसे सतावे, योगी पुरुष न वह हो पावे ।
[1] इन्द्रियों से जुगुप्सा होय, उन के रस में काल न खोय ।
पर संसर्ग से जो बच पाय, राग द्वेष उस निकट न आय ।
इस विध पाल शौच का नेम, प्राप्त करे जन योग व क्षेम ।
नेम शौच का बहु गुणकारी, हरे जीव की जीर्ण बिमारी ।

दो०-नेम योग का पालना, गुणकारी बहु जान ।
[2] जो पातंजल है कथा, ला सुनो तुम ध्यान ।। 4177

[3] इस से चित्त की शुद्धि होवे, मन भी निर्मलता को गोवे ।
निग्रह इन्द्रिन का कर पावे, आत्मदर्श की योग्यता आवे ।
अगला नेम अब करूं बखान, जिस का है 'संतोष' अभिधान ।
इस का पालन जो कर पाय, पूर्ण काम वह जन हो जाय ।
इच्छा रहे न उस की कोई, आत्माराम होय जन सोई ।
आत्म तुष्टि सदैव गुणकारी, योग युक्त का गुण यह भारी ।
[4] जन संतोषी जो सुख पाये, उसकी तुलना कहीं न आये ।

---

[1] इन्द्रियों से जुगुप्सा – अर्थात इन्द्रियों के विषयों के प्रति घृणा । जुगुप्सा शब्द गुप् धातु से बना है । जिसके दो अर्थ हैं – (1) निन्दा करना (2) बचाना ।
दूसरे पक्ष में इसका अर्थ है इन्द्रियों की रोगों से रक्षा ।

[2] सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च (योग दर्शन II .41)
अर्थ –चित्त की शुद्धि, मन की स्वच्छता, एकाग्रता, इन्द्रियों का जीतना और आत्मदर्शन की योग्यता इस (शौच) से प्राप्त होती है ।

[3] 'चित' और 'मन' – इन दो शब्दों का भाव (व अन्तर) अंग्रेजी भाषा के इन दो शब्दों से जिज्ञासुओं को स्पष्ट हो सकता है ।
चित्त = Consciousness; मन = Mind.

[4] संतोषादनुत्तमसुखलाभः (योग दर्शन II .42)
अर्थ –संतोष से अनुत्तम सुख का लाभ होता है ।

[1] अगले नेम का करूं बखान, जानो 'तप' उसका अभिधान ।
तप के नेम पर जो चल पाय, तन मन के सब दोष दुराय ।

दो०–इन्द्रिन के जो दोष हैं, वा जो तन के बीच ।
तप से वे सब दूर हों, योगी बने समीच" ।। 4178

बोला साध "हे नाथ सुजान, स्पष्ट करें यह तप का ज्ञान" ।
कहा नाथ "तुम जानो भाई, इन्द्रिन में बहु शक्ति समाई ।
उस शक्ति के उद्बोधन हेत, साधन 'तप' है बहु अभिप्रेत ।
गुरु सेवा में रह कर साध, करत परिश्रम जो निर्बाध ।
सुसंस्कृत होवें उस के अंग, पाये सिद्धि न रहे अपांग ।
गुरु की सेवा तप लो जान, इससे अधिक और तप न मान ।
ऐसा तपस्वी जो जन होय, कायेन्द्रिन में शक्ति संजोय ।
रहे न दोष उस जन के बीच, सिद्धि मिले उसे सकल समीच ।

दो०–इन्द्रिन में जो गुण छिपे, प्रकट भयें तब साध ।
गुरु सेवा में वास कर, तप जब ले आराध" ।। 4179

कहा साध "हे नाथ सुजान, समझ लिया मैं गूढ़ ज्ञान ।
गुरु पास जो शिष्य रह पाये, पूर्ण लाभ उस को हो पाये ।
हे नाथ अब आप समझायें, "स्वाध्याय' का लाभ बतलावें" ।
सद्गुरु कहन लगे तब बात, "स्वाध्याय' का है गुण बहु तात ।
[2] सदा करे जो जन स्वाध्याय, अपने इष्ट का दर्शन पाय" ।

---

[1] कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः (योग दर्शन II .43)
अर्थ –तप से अशुद्धि के क्षय होने से शारीरिक इन्द्रियों में सिद्धि का संचार होता है (अर्थात इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है ।)

[2] स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः (योग दर्शन II .44)
अर्थ –स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है ।

कहा साध "हे सद्गुरु देव, गूढ़ बात है कही अधिदेव ।
स्वाध्याय का स्वरूप बतायें, किस ग्रंथ को जन पढ़ पायें ।
किस विध इष्ट का हो साक्षात, ये भी स्पष्ट करें प्रभु बात" ।
बोले नाथ उस की सुन बात, "तेरा प्रश्न उच्चित है तात ।

दो०-गुण स्वाध्याय का कथा, दर्श इष्ट का होय ।
यह भी एक रहस्य है, सुनो ध्यान से सोय ।। 4180

प्रातः काल जब तुम चलि आओ, स्पष्ट बात तब तुम सुन पाओ" ।

दिन उन्नीसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, मौन भाव से बैठन पाया ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, श्रवण करो अब नवीन ज्ञान ।
जो जन इष्ट को नित्त ध्यावे, उसकी लीला को नित गावे ।
स्वाध्याय उसी ग्रंथ का होय, इष्ट संबंधी होवे जोय ।
उस को सदा स्मरण कर पावे, अन्य रूप न चित्त में लावे ।
पढ़े सुने नहीं ऐसे गंथ, जिन में वर्णित भिन्न हो पंथ ।
दीर्घ काल यह नेम निभावे, दर्श इष्ट का जन वह पावे ।

दो०-इसी रीत से साध मम, होय इष्ट संयोग ।
स्वाध्याय की रीती से, करो निरन्तर योग" ।। 4181

सुन नाथ की स्पष्ट यह वाणी, कहा साध ने "जन कल्याणी ।
स्पष्ट बात जो आप बताई, जग ने तो यह दीन भुलाई ।
मुझे मिला है नूतन ज्ञान, चलूंगा इस पर हे भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, स्वाध्याय का हो जिस को ज्ञान ।
अगला नेम सफल हो पाये, जो 'ईश्वर प्रणिधान' कहाये ।
रूप इष्ट का स्थित हो जाये, और चित्त में दृढ़ जम जाये ।

वृत्ति का तब निरोध लो जान, वा एकाग्र चित्त को मान ।
[1] यह ही 'समाधि' है मम मीत, इस विध एकाग्र करना चीत ।

दो० – हे साधो तुम ने सुने, पांच यम और नेम ।
इन सबन को सिद्ध कर, मिले योग वा क्षेम ।। 4182क
जभी समाधि सिद्ध भये, होय ईश का दर्श ।
आगे जो हो पूछना, लो पूछ सह हर्ष" ।। 4182ख

कहा साध "हे नाथ प्यारे, 'यम' 'नियम' जान लीने सारे ।
तव कृपा से यत्न करूंगा, वा निरन्तर उन पै चलूंगा ।
एक बात मुझ को बतलायें, जभी समाधि योगी लगायें ।
किस आसन में स्थित हो पायें, सुख पूर्वक जो ध्यान लगायें" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, यह प्रश्न लो उच्चित जान ।
अवस्था जिस में स्थित हो जाय, और जन सुख पूर्वक रह पाय ।
[2] वही स्थिति हो आसन भाई, समाधि उस में हो सुखदाई ।
विशेष आसन न इस हित जानें, योगी सुविधा निज पहचानें ।

दो० – होय स्थित जिस रीति ही, योगी करत ध्यान ।
सुखपूर्वक जिमि रह सके, उस को आसन जान" ।। 4183

कहा साध "हे सद्गुरु देव, स्पष्ट बतलावें इस का भेव ।
उस आसन का नाम बतावें, बैठ जिमि हम ध्यान लगावें" ।
कहा स्वामी "हे साध सुजान, बात सुनो तुम ला कर ध्यान ।

---

[1] समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् (योग दर्शन II .45)
अर्थ – समाधि की सिद्धि ईश्वर प्रणिधान से होती है ।

[2] स्थिरसुखमासनम् (योग दर्शन II .46)
अर्थ – जो स्थिर और सुखदाई हो वह आसन है ।

'पद्मासन' वा 'सिद्ध' लो जान, 'वज्रासन' और 'सुख' पहचान ।
'स्वास्तिकासन' व 'भद्र' भाई, योगिन को ये सब सुखदाई ।
इक बात मैं और कथ पाऊँ, सर्वसाधारण हित सुनाऊँ ।
दोष युक्त यदि टांग हो साध, बैठ योग न सकत आराध ।
वह क्या करे बताओ मीत, कहो विचार के अपने चीत ।

दो०-अपने चित्त विचार कर, उत्तर देवो मीत ।
दोष युक्त यदि टांग हो, साधन से भी प्रीत ।। 4184क
वह नर किस विध कर सके, समाधि का अभ्यास ।
सोच बताओ साध जी, उस हित आसन खास"।। 4184ख
गुरु से पा आदेश को, गया सोच में खोय ।
ध्यान में न वह ला सका, ऐसा आसन कोय ।। 4184ग

उत्तर जभी न कुछ भी पाया, सद्गुरु निज मुख से फरमाया ।
"मैं बतलाऊँ तुम को तात, ध्यान खड़े भी लग ही जात ।
बैठन का यदि मन में आवे, कुर्सी का प्रयोग कर पावे ।
चित्त जिसका एकाग्र होय, सबन अवस्था में सुख गोय ।
पर इक बात और भी जानो, नर अस्वस्थ जभी पहचानो ।
तब ध्यान की कौन हो रीत, कह दो मुझ को सोच निज चीत"।
उस असमर्थता निज जताई, स्वामी जी तब बात बताई ।
"जन असमर्थ लेट ही जाये, शवासन में ध्यान कर पाये ।

दो०-शवासन में लेट कर, करे निरन्तर योग ।
योग सबन को चाहिए, जानें सज्जन लोग" ।। 4185

साधु ने जभी यह सुन पाया, उस के मन में हर्ष समाया ।
और कहा "हे नाथ प्यारे, दीन जनों के आप सहारे ।

किसी न ऐसा मार्ग बताया, दुखी जनों को राह सुझाया ।
आप ने सब हित हि कह पाया, दीन जनों को नहीं भुलाया" ।
कहा नाथ "तुम ने सब जाना, यम नियम व आसन पहचाना ।
[1] आसन सुखमय तब हो पाय, 'प्रयत्न शैथिल्य' जब जन लाय ।
देह को शिथिल इमि कर पाये, अनन्त में बिन्दु वत समाये ।
[2] भूल जायेगा देहाध्यास, द्वन्द्वों का नहीं हो आभास ।

दो० – *यह अवस्था जभी भये, उलटें तभी प्राण ।
गति विछिन्न हो प्राण की, प्राणायाम हि जान" ॥ 4186

कहा साध तब "हे मम नाथ, मुझे बतावें इस के साथ ।
श्वास गति विछिन्न किमि होय, प्राणायाम कथा है जोय" ।
कहा नाथ "जब सायं आओ, इस रहस्य को जानन पाओ ।
ज्ञान गूढ़ यह है मम भाई, जान सके जिस कीन कमाई ।
सायं काल जभी चलि आओ, इस को जानन तब ही पाओ" ।

दिन उन्नीसवां (सायं)

सायं काल साध जब आया, वह ही उस प्रसंग चलाया ।
प्राणायाम की पूछी बात, लागा कहन "बताइये तात ।
श्वास विछिन्न जभी हो पायें, दोष न क्या देह में आयें" ।

---

[1] प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापतिभ्याम् (योग दर्शन II .47)
अर्थ – (आसन) प्रयत्न की शिथिलता और आनन्त्य आकाशादि में जो अनन्तता है (उसमें) समापत्ति द्वारा सिद्ध होता है ।

[2] ततो द्वन्द्वानभिघातः (योग दर्शन II .48)
अर्थ – आसन की सिद्धि से द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती ।

* तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविछेदः प्राणायामः (योग दर्शन II .49)
अर्थ – आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास प्रश्वास की गति का विछिन्न होना प्राणायाम है ।

कहा नाथ "जो योग की रीत, हर इक जन को नहीं प्रतीत ।
इड़ा पिंगला श्वास चलायें, आसन काल छिन्न हो जायें ।
[1] तभी सुषुम्ना श्वास चलावे, मन एकाग्र संग हो पावे ।

दो०-[2] श्वास सुषुम्ना से चले, गति हो उस की और ।
जन का दीर्घ श्वास हो, चले सूक्ष्म हर ठौर ।। 4187

तीन अवस्था उस की जानो, सभी में दीरघ सूक्ष्म मानो" ।
पूछा साध तब "जग के नाथ, मुझे बताइये अब इस साथ ।
तीन अवस्था कौन सी सोय, जिन में श्वास की गति यह होय" ।
कहा नाथ "तुम लो यह जान, श्वास की तीन अवस्था मान ।
एक अवस्था वही कहलाय, भीतर श्वास जभी चलि जाय ।
दूजी अवस्था को लो जान, आय बाहिर जब जन का प्राण ।
तीज अवस्था वह है भाई, रुके श्वास जब भीतर जाई ।
तीनों अवस्था सूक्ष्म जान, चलें सुषुम्ना से जब प्राण ।

दो०-प्राणों की यह साधना, गहे गुरु से भाई ।
देखा देखी जो करे, हो उसे दुखदाई ।।4188क
एक अवस्था और है, उसका करूं बखान ।
[3] प्रतीति हो न श्वास की, भीतर चालें प्राण" ।।4188ख

---

[1] इस का भाव यह है कि आसन की सिद्धि होने पर और मन एकाग्र हो जाने पर इडा – पिंगला दो नाडियां जो श्वास प्रश्वास चला रही थीं सुप्त अवस्था में चली जाती हैं । और उन दोनों के स्थान सुषुम्ना नाड़ी ले लेती है ।

[2] बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः (योग दर्शन II .50)
अर्थ – (यह प्राणायाम) बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तंभवृत्ति (तीन प्रकार का होता है); देश काल और संख्या से देखा हुआ लंबा और हल्का होता है ।

3 बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः (योग दर्शन II .51)
अर्थ – बाहर अन्दर के विषय से अलग ही चौथा प्राणायाम है,

कहा साध "यह समझ न आई, चौथी अवस्था जो बताई ।
बिन प्रतीति जो चाले प्राण, वह क्या होता है भगवान ।
कर किरपा मुझ को बतलायें, यह रहस्य की बात समझायें" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, इस का भी मैं दूंगा ज्ञान ।
अनुभव बिन न समझ में आवे, होय अभ्यास जानन पावे ।
पद्मासन में बैठो जाय, सुषुम्ना में तुम चित्त लगाय ।
बैठ रहो कुछ काल हे साध, आओ फिर जब लो आराध ।
फिर बतलाना जो हो प्रतीत, साधन ही है योग की रीत" ।

दो०–साध गया एकांत में, बैठा आसन लाय ।
दो घड़ी पश्चात फिर, आ कर शीश झुकाय ।। 4189

कहा नाथ "हे साध प्यारे, बैठे थे जा एक किनारे ।
उठ कर वहां से हो चलि आय, अनुभव कह दो जो हो पाय" ।
साध बोला "हे सद्गुरु देव, किमि बतलाऊँ सारा भेव ।
शब्द नहीं जो मैं कथपाऊँ, अनुभव अपना जोय बताऊँ ।
सुषुम्ना में जब मन लगाया, गुरुमन्त्र स्वतः ही चल पाया ।
प्राण की गति तो न दिख पाये, स्फुरना नाड़ी में हो जाये ।
[1] वहां उजाला भी मैं देखा, जैसे चांद उदय हो पेखा ।
देख यह सारा दृश्य इक साथ, तव चरणि उठ कर आया नाथ ।

दो०–तव आज्ञा को पाय कर, बैठा ला मैं ध्यान ।
जो कुछ आप दिखलाया, मैं ने कीन बखान" ।। 4190

कहा नाथ "तुम भाग्य हो वान, जिस को अनुभव हुआ महान ।

[1] तत्र क्षीयते प्रकाशावरणम् (योग दर्शन II .52)
अर्थ– उस से प्रकाश का आवरण क्षीन हो जाता है ।

[1] भीतर के पट खुल हैं पाये, 'धारणा' के योग्य बन पाये ।
योग धारणा जब कर पाओ, स्थिरता तब निज मन में पाओ ।
वृत्तियां बाधक न हो पायें, धारणा में सभी लग जायें ।
मन न इन्द्रियों पाछे भागे, विषय हों मन के ही अनुरागे ।
[2] इक अनोखा कर्म हो पाये, जोय 'प्रत्याहार' कहाये ।
इन्द्रियों का जो प्रबल है रूप, उन का बदल जाये स्वरूप ।
[3] मन के वश में वे आ जायें, 'वशीकरण' इस को कथ पायें ।

दो०–हे साधो मैं कथ दिये, साधन योग इस काल ।
चाहो जो तुम पूछना, आना प्रातः काल'' ।। 4191

दिन बीसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, उस के मन में हर्ष समाया ।
राज योग की शिक्षा पायी, सद्गुरु कृपा भी संग पायी ।
आगे का जो ज्ञान अब होय, चाहे वह भी गुरु से गोय ।
सद्गुरु अन्तर्यामी प्यारे, उस के समझें भाव न्यारे ।
कर कृपा बोले सद्गुरु देव, ''साधो गूढ़ योग के भेव ।
जाना तूने प्रत्याहार, विषयों पर जो वशी है कार ।
जिस बिन योग न संभव भाई, पड़े धर्म जिस बिना खटाई ।
मन की चपलता होय न दूर, जिस बिन आवागमन जरूर ।

---

[1] धारणासु च योग्यता मनसः (योग दर्शन II .53)
अर्थ– और धारणाओं में मन की योग्यता होती है ।

[2] स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (योग दर्शन II .54)
अर्थ– इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ संबन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण जैसा करना प्रत्याहार है ।

[3] ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् । (योग दर्शन II .55)
अर्थ– इस प्रत्याहार से इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकरण होता है ।

दो०– प्रत्याहारी जब भये, वश में तब हों अंग ।
ईश बसे फिर चित्त में, 'धारणा' हो न भंग" ।। 4192

सुन नाथ की स्पष्ट यह वाणी, कहा साध "हे जग कल्याणी ।
'धारणा' किसे कहें हे नाथ, यही बतला कर करें सनाथ" ।
बोले नाथ "जो पूछी बात, उत्तर दूं मैं उसी का तात ।
[1] एक लक्ष्य में चित्त टिकाना, 'धारणा' का है यह निशाना ।
योगी एक लक्ष्य अपनावे, जिसकी शिक्षा गुरु से पावे ।
कभी न बदले लक्ष्य को साध, वही लक्ष्य ले सदा आराध ।
एकाग्र वृत्ति का अभ्यास, धारणा मध्य यत्न यह खास ।
चलायमान जभी वृत्ति होय, कर यत्न फिर उसे संजोय ।

दो०– [2] तीन वस्तु प्रधान हैं, मध्य धारणा गूप ।
एक लक्ष्य दूजा यत्न, तीजा निज स्वरूप ।। 4193क
[3] बिन यत्न जभी धारणा, में टिके मन मीत ।
'ध्यान' उसी का नाम है, हो तुझ को प्रतीत ।। 4193ख

'ध्यान' में यत्न का हो अभाव, दो का ही यहां रहता भाव ।
ध्याता और ध्येय दो जान, 'ध्यान' में इन की हो पहचान ।
उच्च अवस्था योग की जान, जो कथा है यहां पर ध्यान ।

---

[1] देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (योग दर्शन III.1)
अर्थ– चित्त का किसी स्थान विशेष में बांधना धारणा है ।

[2] 'धारणा' में ध्याता, ध्येय, और यत्न की प्रधानता होती है । जब यत्न के बिना मन एकाग्र होने लगता है तो वह 'ध्यान' की अवस्था होती है । 'ध्यान' में ध्याता को अपने स्वरूप और ध्यान के लक्ष्य का ही बोध रहता है । इस से अगली अवस्था 'समाधि' की होती है । उस अवस्था में अपने स्वरूप का भी भान नहीं रहता । केवल लक्ष्य की ही प्रतीति होती है ।

[3] तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् (योग दर्शन III.2)
अर्थ– उस (धारणा) में वृत्ति की एकतानता बने रहना ध्यान है ।

[1] वही ध्यान 'समाधि' कहलाय, ध्याता जब निज रूप खो पाय ।
धारणा ध्यान समाधि जान, इन को एक इकाई मान ।
[2] जिस का 'संयम' है अभिधान, उत्तम योग की यह पहचान" ।
सुन कर नाथ का सब उपदेश, कहा साध "हे मम हृदयेश ।
एक प्रश्न मेरे मन आये, 'सयंम' पाछे क्या जन पाये ।

दो०-संयम का यह रूप जो, आप बताया नाथ ।
उस पाछे क्या लगत है, योगी जन के हाथ" ।। 4194

नाथ कहा "जो प्रश्न है कीन, सूक्ष्म बात तुमने पुछ लीन ।
[3] संयम से बहु होवे ज्ञान, इसे ज्ञान की जननी मान ।
ज्ञानालोक मन में छा जाये, 'संयम' सिद्ध जभी हो पाये" ।
बोला साध "नाथ बतलायें, मेरा संशय आप दुरायें ।
मेरा अगला प्रश्न है नाथ, उत्तर मिले इसी के साथ ।
प्रज्ञावान जब योगी होय, लाभ ज्ञान से क्या वह गोय" ।
नाथ सुनी जब साध की वाणी, मुख से बोले नाथ कल्याणी ।
"अभी प्रश्न जो तुम कर पाया, कभी किसी के मन न आया ।
मेरा निश्चय सुन लो भाई, कर के जन जो योग कमाई ।
उसका करे न जो उपयोग, व्यर्थ ही जानों उस का योग ।

---

[1] तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः (योग दर्शन III.3)
अर्थ- वह ध्यान ही समाधि कहलाता है जब उस में 'ध्येय' मात्र भासता है । और ध्याता का स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है ।

[2] त्रयमेकत्र संयमः (योग दर्शन III .4)
अर्थ-तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) का इकट्ठा एक नाम 'संयम' है ।

[3] तज्जंयात्प्रज्ञालोकः (योग दर्शन III.5)
अर्थ - उस संयम के जय से प्रज्ञा का प्रकाश होता है ।

दो०–[1] ज्ञान का उपयोग होय, भूमिन में ही साध ।
सप्तभूमि सोपान जोय, ले योगी आराध'' ।। 4195

कहा साध ''हे नाथ प्यारे, योग अंग सुन पाये सारे ।
यम व नियम भी हे भगवान, संयम का सभी पाया ज्ञान ।
मुझे न सूझे अब कुछ नाथ, पूछ सकूं जो और इस साथ ।
हे जगदीश्वर अन्तर्यामी, मैं सुनूं जो कहेंगे स्वामी'' ।
इतना कह उस माथ झुकाया, स्वामी मुख से तब फरमाया ।
[2] ''संयम' का जो तुम सुन पाया, यह योग 'अंतरंग' कहाया ।
पांच अंग जो पहले आये, योग के 'बहिरंग' कहलाये ।
रहस्य की इक बात बताऊं, 'संयम' भी 'बहिरंग' सुनाऊं ।
[3] जभी निर्बीज अवस्थ आय, 'संयम' भी 'बहिरंग' कहाय ।

दो०–हे साधो तुम जान लो, यह मन का 'परिणाम' ।
सुगम न इस की साधना, अति कठिन है काम'' ।। 4196

सुन नाथ की गूढ़ यह वाणी, बोला साधु '' हे महादानी ।
जो बात है अभी कथ पायी, वह न मेरी समझ में आयी ।
होता क्या है चित्त 'परिणाम', समझूं आप से सुख के धाम'' ।

---

[1] तस्य भूमिषु विनियोगः (योग दर्शन III.6)
अर्थ – उस (प्रज्ञा) का विनियोग भूमियों मे करना चाहिए । योग की सात भूमियां ये हैं - (1) शुभेच्छा (2) विचारणा (3) तनुमानसी (4) सत्वापत्ति (5) असंसक्ति (6) पदार्थाभावना (7) तुर्यगा
इसी प्रसंग में देखे दोहा संख्या – 4080 से 4081 और 4154 से 4156
[2] त्रयमन्तरङ्ग पूर्वेभ्यः (योग दर्शन III.7)
अर्थ– पहले (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) की अपेक्षा से तीनों धारणा, ध्यान, समाधि योग के अंतरंग हैं ।
[3] तदपि बहिरंग निर्बीजस्य (योग दर्शन III.8)
अर्थ – वह संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) भी निर्बीज योग का बहिरंग है ।

नाथ कहा "तुम सायं आना, इसको समझ तभी तुम पाना" ।

दिन बीसवां (सायं)

सायं काल साध चलि आया, उसने वही प्रश्न दुहराया ।
"चित्त परिणाम' क्या है नाथ, यह बतला मुझे करें सनाथ" ।
कहा नाथ "तुम को बतालाऊं, 'परिणाम' का स्वरुप जताऊं ।
इक 'निरोध' परिणाम लो जान, दूजा 'समाधि' लो पहचान ।
तीजा 'एकाग्र' है मम साध, योगी सब को लेत आराध ।

दो०-योगी कर अभ्यास को, लेत चित्त को साध ।
परिवर्तन जो होत तब, वही कथा मैं साध ।। 4197

चित्त अपना स्वभाव जताये, योगी उस को वश में लाये ।
कुछ सफल वह जभी हो पाये, एकाग्र वृत्ति तब कहलाये ।
और करे अभ्यास को साध, 'समाधि' को वह लेत आराध ।
[1] कठोर यत्न का फिर परिणाम, होता वह निरोध परिणाम ।

---

[1] सूत्र –चित्त के तीन परिणामों (निरोध, समाधि और एकाग्रता) की परिभाषा पातञ्जलि ने योग दर्शन में इस प्रकार की है –
व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचितान्वयो निरोधपरिणामः (योग दर्शन III.9)
अर्थ – व्युत्थान के संस्कार का दबना और निरोध के संस्कार का प्रकट होना, यह जो निरोध काल में होने वाला चित्त का दोनों संस्कारों में अनुगत होना है वह निरोध परिणाम कहा जाता है ।
सूत्र – तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् (योग दर्शन III.10)
अर्थ – निरोध संस्कार से चित्त की शांत प्रवाह वाली गति होती है ।
सूत्र – सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः (योग दर्शन III.11)
अर्थ – चित्त के सर्वार्थता और एकाग्रता का नाश होना और प्रकट होना चित्त का समाधि परिणाम है ।
सूत्र –ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः । (योग दर्शन III.12)
अर्थ – तब फिर समानवृत्तियों का शांत होना और उदय होना चित्त का एकाग्रता परिणाम है ।

उत्तम योग निरोध लो मान, वही निर्बीज अवस्था जान" ।
बोला साध "मुझे बतलायें, इन सब का प्रभाव जतलायें ।
जीव पर इनका क्या प्रभाव, मेरे चित्त में उपजा भाव" ।
कहा नाथ "प्रश्न यह भारी, सृष्टि रची इन्हीं से सारी ।

दो० – [1] जीवों में जो विविधता, भिन्न सभी के रूप ।
लक्षण सब के भिन्न हैं, तथ्य यही है गूप" ॥ 4198

कहा साध "हे नाथ प्यारे, समझे मैंने भाव तिहारे ।
यह परिणाम जन्म प्रदाता, यह ही लक्षणों का प्रदाता ।
जैसा चित्त जन का बन पाय, वैसे ही वह जन्म में जाय ।
जीव के हों पर जन्म अनेक, क्रम किस से फल हो प्रत्येक ।
यही बात मुझको समझायें, भ्रम मेरा यह आप दुरायें" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, सरल बात तुम लो यह जान ।
तीनों कालों का क्रम जोय, करत निर्धारित फल को सोय ।
इस में संशय की नहीं बात, त्रुटि नहीं सृष्टि में कुछ तात ।

दो० – [2] जग में जो भी हो रहा, उसमें क्रम है मीत ।
क्रम बिन कुछ भी है नहीं, लो यह मन में चीत ॥4199क
[3] क्रम में हो यदि भिन्नता, हो तब फल में भेद ।
जगती का सिद्धांत यह, वर्णें यह ही वेद" ॥4199ख

---

[1] एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः (योग दर्शन III.13)
अर्थ – चित्त के परिणाम से ही भूतों और इन्द्रियों में धर्म, लक्षण और अवस्था परिणाम व्याख्या किये गये जानने चाहियें । (भाव यह है कि चित्त की भिन्नता के कारण ही जीवों में रूप आदि की अनेकता है ।)

[2] शांतोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी (योग दर्शन III.14)
अर्थ– अतीत, वर्तमान और भविष्यत धर्मों में अनुगत धर्मी (चित्त) है ।

[3] क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः (योग दर्शन III.15)
अर्थ – क्रम का भेद परिणाम के भेद में होता है ।

कहा साध "हे नाथ सुजान, तीन परिणाम लीन मैं जान ।
'एकाग्र' 'समाधि' और 'निरोध', पाया तीनों का मैं बोध ।
तीनों में जब जन हो दक्ष, योगी का तब क्या हो लक्ष ।
अथवा फल इस का क्या होय, मिलत कठोर तप करके जोय" ।
यह सुन बात नाथ मुस्काय, और कहा " तुम समझ न पाय ।
निरोध अवस्था जन पा जाय, निर्बीज अवस्था वह कहाय ।
[1]'पुरुष विशेष' वह जानों मीत, वह तो ईश्वर ही लो चीत ।
उस की शक्तियों का न अन्त, उस की विभूतियों का न अन्त ।

दो०-जग की सकल विभूतियां, कैवल्य का व लाभ ।
उसी पुरुष में जान लो, पुरुषोत्तम अमिताभ" ॥ 4200

कहा साध "हे नाथ प्यारे, अजब लगें सब वचन तिहारे ।
'पुरुष' पुरुषोत्तम जब बन पाय, कौन विभूतिन वह पा जाय ।
उन का करिये नाथ बखान, प्रकट होत वे किमि भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, सकल विभूतिन का किसे ज्ञान ।
जो अभी मैं चित्त मैं आनूं, सकल तिहारे वे बखानूं ।
सकल विभूतिन जन के पास, 'संयम' द्वारा होय विकास ।
जिस पुरुष का दिव्य स्वभाव, सके वह कर उनका प्रकटाव ।
तीन 'परिणाम' जो मैं कथ पाय, उन पर 'संयम' जन कर पाय ।
[2]भूत भविष्य को लेवे जान, त्रिकाल द्रष्टा वह इन्सान ।

दो०-अद्भुत यह विज्ञान है, योगी जन के पास ।
ऐसी शक्ति मिलत तभी, जभी दीर्घ अभ्यास ॥ 4201

---

[1] देखो दोहा संख्या - 4068 से 4070

[2] परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् (योग दर्शन III.16)
अर्थ- तीनों परिणामों में संयम करने से भूत और भविष्यत का ज्ञान होता है ।

कल प्रात जब तुम आ जाओ, अगली बात तभी सुन पाओ''।

दिन इक्कीसवां (प्रातः)

प्रातकाल जब भया सुहाना, भया साधु का आश्रम आना।
आ कर उसने कीन अरदास, ''नाथ शरणि' यह आप का दास।
आप सर्वज्ञ ईश स्वामी, पूर्णयोगेश्वर पूर्णकामी।
आप ने दीना जो है ज्ञान, विश्व में ऐसा न विज्ञान।
जीव को ईश्वर सम बनायें, दिव्य शक्ति उसमें उपजायें।
यह सब विद्या आप के पास, राखो चरणि, यह है तव दास।
एक विभूति आप बतलाई, अद्भुत योगी की प्रभुताई।
और सुनूं मैं दीना नाथ, बैठ चरणों में हे जगनाथ।

दो०–और विभूतिन योग की, मैं सुनूं हे नाथ।
बैठ आप के चरण में, करिये मुझे सनाथ'' ॥ 4202

कहा नाथ ''मैं तुझे बताऊं, परमयोगी का गुण जताऊं।
[1] वह योगी सब भाषा जाने, सब जीवों का 'रुत' पहचानें।
जग का कोई जीव भी होय, ध्वनि उच्चारे मुख से जोय।
उस का भाव योगी ले जान, शक्ति दिव्य योगी में मान''।
कहा साध ''हे नाथ महान, किस रीति सब मिलता ज्ञान।
इस विज्ञान को करें स्पष्ट, मम संशय जिस विध हो नष्ट''।
कहा नाथ ''मैं तुझे बताऊं, तीन ध्वनि के अंग जताऊं।
'शब्द' और फिर 'अर्थ' पहचान, तीजा उन का भाव लो जान।
तीन मिल जब एक हो जायें, भेद न उनमें जानन पायें।

---

[1] शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्
(योग दर्शन III.17)
अर्थ– शब्द, अर्थ और ज्ञान के परस्पर के अध्यास (मिलाप) से अभेद भासना होता है। उन के विभाग में संयम करने से सब प्राणियों के शब्द का ज्ञान होता है।
रुत = आवाज़

दो०-योगी संयम करत है, उन तीनों पर साध ।
उस ध्वनि का भाव तब, योगी लेत आराध ।।4203क
परम दिव्य इस रीत को, जानें योगी सिद्ध ।
रीति यही जो मैं कथी, वह शास्त्रन में प्रसिद्ध" ।।4203ख

कहा साध "मम बुद्ध चकराय, योग शक्ति जब सोच में लाय ।
क्या और विभूति योगी बीच, कथन उस का भी करें समीच ।
मम मन बहुत उत्सुक है नाथ, सुनूं सभी रह आप के साथ" ।
कहा नाथ "मैं तुझे सुनाऊँ, एक विभूति और बताऊँ ।
[1]योगी जो जन देखन पाये, पूर्व जन्म उस का बतलाये" ।
साध कहे "यह करा -है -मात, छिपा राखी जो विधना बात ।
उस को भी ले योगी जान, सचमुच है यह दिव्य विज्ञान ।
स्पष्ट बात यह नाथ बतायें, इस विज्ञान का रहस्य सुनायें ।

दो०-योगी जन किस रीति से, 'संयम' कर ले जान ।
पूर्व जन्म इक जीव का, कहो मुझे भगवान" ।। 4204

कहा नाथ "जो भी जग जन्मा, पूर्व जन्म कुछ कीने कर्मा ।
उन कर्मों का जो संस्कार, योगी देखत 'संयम' धार ।
सभी संस्कार जभी ले देख, पूर्व जन्म को ले वह पेख" ।
बोला साध "हे नाथ सुजान, यह तर्क है ठीक भगवान ।
मन्द बुद्धि पर हूं गुरु देव, विनय करूं इक आपकी सेव ।
जानो मुझे अज्ञानी बाल, समझे जो नहीं कठिन सवाल ।
दे दृष्टांत इसे समझायें, भ्रांति मेरी दूर कर पायें ।
पूर्व संस्कारों की यह बात, बैठ सके न मम चित्त तात ।

[1] संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् (योग दर्शन III.18)
अर्थ- संस्कार के साक्षात करने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है ।

दो०-ज्ञान गूढ़ है नाथ जी, करिये इसे स्पष्ट ।
आप का उपदेश सुन, भ्रांति हो मम नष्ट" ॥ 4205

नाथ कहा "हे साध सुजान, यह बात स्पष्ट, कठिन न मान ।
किसी बात को जानन हेत, हो सदा अनुमान अभिप्रेत ।
अनुमान के हि नेम से मीत, योगी को हो पूर्व प्रतीत ।
दे दृष्टांत मैं करूं स्पष्ट, भ्रांति होय जिमि तेरी नष्ट ।
धूएं से अग्नि का अनुमान, ला लेता है मनुज सुजान ।
तिमि संस्कारों को ही देख, पूर्व जन्म ले योगी पेख" ।
कहा साध "हे नाथ प्यारे, यह बात तो जानें सारे ।
जहां धूआं वहां अग्नि होय, बात पूर्व की किमि जन गोय ।

दो०-अन्तर भारी है प्रभो, दोनों में भगवान ।
अग्नि को जा देख सकें, जिस से मिले प्रमाण ॥ 4206क
पूर्व जन्म की सत्यता, कैसे हो प्रतीत ।
समझ सके न नाथ मम, यह रहस्य मम चीत" ॥ 4206ख

कहा नाथ "तुम सायं आना, इस बात को समझ तब पाना" ।

दिन इक्कीसवां (सायं)

सायं भयी साध आ पाया, आ कर उस ने शीश झुकाया ।
वही प्रश्न उस ने कर दीना, प्रातः था जो उस ने कीना ।
कहा साध "हे नाथ योगेश, मुझे देवें दृष्टांत विशेष ।
जिस से मन में बैठे ज्ञान, मन्द बुद्धि मैं हूं अनजान" ।
कहा नाथ "तू नहीं अनजान, जिज्ञासु को ही मिलता ज्ञान ।
जिज्ञासु परिप्रश्न कर पाय, जब तक उसे संतोष न आय ।
एक तुझे मैं गाथा सुनाऊं, संस्कार का प्रसंग चलाऊं ।

दो०-पाछल मिलत ज्ञान है, संस्कारों से मीत ।
अनुभवशाली पुरुष जो, उसके आवे चीत ।।4207क
अग्नीश ऋषि के आश्रम, पहुंचा ऋचास्मर ।
चित्त जिज्ञासा थी उस, प्रश्न दीना उस कर ।।4207ख

ऋषिवर यह सब शास्त्र बखानें, त्रिकालज्ञ योगिन को मानें ।
किस विध ज्ञान मिले यह नाथ, यह समझा कर करें सनाथ ।
ऋषि उत्तर उसको दे पाये, योग से बुद्धि जो उपजाये ।
'विवेकरव्याति' वह तुम जानो, दिव्य बुद्धि योगी की मानो ।
संस्कार से बहु कुछ ले जान, पूर्व जन्म भी लेत पहचान ।
बोला ऋचास्मर लूं यह जान, संस्कार किसे कहें भगवान ।
कहा ऋषि जो जहां से आय, प्रभाव वहां का ही वह लाय ।
लो वही संस्कार तुम जान, उसी से लागत है अनुमान ।

दो०-पूर्व जन्म की बात जो, तुझे कही है मीत ।
वह भी है संस्कार ही, लो तुम मन में चीत ।। 4208

तब ऋषि इक वाहन दिखलाया, किसी दिशा से था जो आया ।
और प्रश्न उसे कर पाया, कहो कहां से यह चलि आया ।
कहा ऋचास्मर कैसे जानूं, बिन पूछे किस विध पहचानूं ।
ऋषि बोला मैं "तुझे बताऊँ, बिन पूछे ही सब कथ पाऊँ ।
उच्च पर्वत से उतरा मीत, यह है कहता मेरा चीत ।
प्रश्न ऋचास्मर तब कर पाया, यह अनुमान है किमि लगाया ।
ऋषि बोला मैं तुझे बताऊं, प्रश्न तुम्हारा मैं सुलझाऊं ।
वाहन का संस्कार बताता, किस स्थान से यह चलि आता ।

दो० – मैंने देखा ध्यान से, हिम का इस पर पात ।
लगा लिया अनुमान मैं, पर्वत से चलि आत ।। 420क
ऐसे ही अनुमान से, योगी लेते जान ।
पूर्व जन्म की बात का, उन को मिलता ज्ञान" ।। 420ख

स्वामी यह दृष्टांत सुनाया, साध की बुद्धि में तब आया ।
[1] योगी 'संयम' जब कर पाये, पूर्व जन्म के ज्ञान को पाये ।
संस्कार को आधार बनाय, रहस्य अनेक जान वह पाय ।
स्वामी जी से तब कह पाया, "नाथ कथूं मैं किमि तव दाया ।
क्लिष्ट बात भी कीन स्पष्ट, कीन है मेरी भ्रांति नष्ट ।
योग की हैं विभूति अनेक, कथन करें प्रभु और भी एक ।
उस को सुन कर हो विश्वास, योग विद्या है जग में खास" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊं, विशेष विभूति इक कथ पाऊं ।

दो० – अन्य पुरुष के चित्त का, होय योग से ज्ञान ।
विशेष विभूति एक यह, शास्त्र करें बखान" ।। 4210

बोला साध "यह सब जन जानें, योगी अन्तर्यामी मानें ।
पर यह संभव कैसे होय, तुम से रहस्य मैं जानूं सोय" ।
कहा नाथ "संयम से साध, योगी लेता बहु कुछ साध ।
अन्य पुरुष का देख विश्वास, चित्त लगावे उसमें खास ।
गूढ़ बात वह लेवे जान, उस के चित्त को ले पहचान ।
'संयम' की जोय शक्ति भाई, जानो उस की ही प्रभुताई ।

[1] प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् (योग दर्शन III.19)
अर्थ – दूसरे के विश्वास पर संयम करने से दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है ।

'संयम' बिना न संभव होय, गुप्त बात किमि जाने कोय ।
उत्तर मिला क्या तुम को तात, समझ पाई क्या मेरी बात ।
योगी अन्तर्यामी होय, उस के सम नहीं जग में कोय ।

दो०-योग समान न जगत में, शक्ति है मम मीत ।
'संयम' योगी जब करे, होय सभी प्रतीत" ।। 4211

सुन कर नाथ का यह उपदेश, कहा साध ने "हे हृदयेश ।
सभी ज्ञान है आप के पास, पूछ लूं कुछ बात अब खास" ।
कहा नाथ "तुम कल आ जाना, अपने मन की तब कह पाना" ।
इस विध बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन बाइसवां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, उसे नाथ ने स्मरण कराया ।
"मन में थी जो सायं बात, पूछ लेवो अब तुम हे तात ।
परिप्रश्न से ही प्रिय साध, शिष्य लेत है ज्ञान आराध ।
जो भी प्रश्न है तेरे चित्त, ज्ञान मिलेगा उसी निमित्त ।

दो०-प्रश्न करो हे साध जी, जो तुम्हारे चित्त ।
ज्ञान मिलेगा योग का, आगे इसी निमित्त" ।। 4212

बोला साध "हे नाथ सुजान, संशय मम मन एक महान ।
योगी जब मन को पढ़ पायें, पर संस्कार तभी मन आयें ।
भले बुरे जो हों संस्कार, योगी बचेगा किस प्रकार" ।
कहा नाथ "तुम पूछा जोय, स्पष्ट करूं मैं तुम को सोय ।
गूढ़ बात तुम जानन चाहो, उत्तर उस का भी अब पाओ ।

योगी के मन जो भी आवे, दृश्य रूप बन उसे लखावे ।
[1] पर के चित्त विचार जो होय, प्रभाव न उस का उस पर होय ।
संयमी का मन दर्पण जान, प्रभाव न प्रतिबिंब का मान ।

दो० – योगी जब है देखता, चित्त अन्य का साध ।
सदा अछूता रहत वह, 'संयम' निज आराध'' ।। 4213

सुन उस ने यह गूढ़ उपदेश, कहा साध ने ''हे सर्वेश ।
रहस खोल आप सब बताया, कहीं से मैं न सुन जो पाया ।
एक बात मैं पूछन चाहूँ, आज्ञा हो तो अब कथ पाऊँ'' ।
कहा नाथ ''हे साध प्यारे, स्पष्ट कहो जो भाव तिहारे'' ।
बोला साध ''हे सद्गुरुदेव, प्रश्न एक यह आप की सेव ।
[2] अन्तर्धान योगी हो जाय, चमत्कार यह किमि हो पाय'' ।
कहा नाथ ''यह रहस्य महान, विरला योगी ले यह जान ।
परम सिद्ध योगिन के पास, ऐसी सिद्धि तुम जानो खास'' ।
बोला साध ''हे योगिराज, मिलें क्या ऐसे योगी आज ।

दो० – मैं चाहूं यह जानना, ऐसे योगी राज ।
होते अन्तर्धान जो, मिल सकें क्या आज'' ।। 4214

स्वामी बोले सुन यह सवाल, ''हमरे सद्गुरु 'राम जो लाल ।
[3] उन की सिद्धि जग ने देखी, निज आंखों से सब ने पेखी'' ।

---

[1] न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् (योग दर्शन III.20)
अर्थ – पर वह (दूसरे का चित्त) अपने विषय सहित साक्षात नहीं होता । क्यों कि वह उस का विषय नहीं है ।

[2] कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तंभे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् (योग दर्शन III.21)
अर्थ – अपने शरीर के रूप में संयम करने से रूप की ग्राह्य शक्ति रुक जाती है । इस से दूसरे की आंख के प्रकाश से योगी के शरीर का सनिकर्ष न होने के कारण (योगी के शरीर का) अन्तर्धान हो जाता है ।

[3] देखो दोहा संख्या – 802 ख

सुन साध चित्त अचरज माना, और निज मुख से उस बखाना ।
"हे स्वामी वह घटन सुनाओ, उत्सुक मन मम शांत कराओ ।
राम प्रभु यह कब दिखलाई, जनता देख उसे कब पाई ।
निज मुख से सब करें बखान, दत्त चित्त सुनें हम भगवान" ।
कहा स्वामी "जिज्ञासु साध, योग लिया जब राम आराध ।
लौटे राम गुरु आज्ञा पाय, हरिद्वार में डेरे लाय ।

दो०-हरिद्धार में ठहर कर, करते थे उपदेश ।
भाई बांधव आ गये, ढूंढ़त उस ही देश ।। 4215

समागम मध्य भये आसीन, राम लाल को लीना चीन ।
क्या जाने क्या उस मन आया, राम लाल निज रूप छिपाया ।
भेद योगी का न को जाने, जनता सभी लगी पछताने ।
भाई बांधव संगी सारे, शोक निमग्न भये थे भारे ।
आस पास सब देखन लागे, इधर-उधर कुछ जन भी भागे ।
संगत में अचरज था भारा, लोप रूप किमि योगी धारा ।
सब को भयी निराशा भारी, उत्सुक जनता दीखे सारी ।
भाई बन्धु राम के सारे, सोच सोच के सब थे हारे ।

दो०-बहुत व्याकुल जन भये, प्रभु का आसन देख ।
योगी लुप्त भया इमि, जल पै जिमि हो रेख ।। 4216

प्रभु जब देखी जनता सारी, डूबी व्याकुलता में भारी ।
वहीं तुरंत प्रकट हो पाये, दर्शन करि जन थे विस्माये" ।
स्वामी इतना कथ उठ पाये, और साधु को वे फरमाये ।
"सायं काल जभी मिल पायें, इसी प्रसंग को फिर चलायें" ।

दिन बाइसवां (सायं)

सायं भयी साध चलि आया, उत्सुकता में डूबा पाया ।
जैसी घटना प्रात सुनाई, शायद कहें अन्य अब भाई ।
इस सोच में बैठ वह पाया, स्वामी मुख से तब फरमाया ।
"हे साधो तुम थे सुन पाये, राम की सिद्धि जो कथ पाये ।

दो०–राम की सिद्धि तुम सुनी, अन्तर्धान की मीत ।
उन के गुरु हैं महाप्रभु, सुन उन की सप्रीत ।। 4217

राम प्रभु के गुरु भगवान, महाप्रभु जिन का अभिधान ।
शिव अवतारी वे योगेश, बस्तियों में न आवें लेश ।
सुनसान वन में उन का वास, मिल सके नहीं आम व खास ।
दर्शन उस को दे वे पायें, जिस पर दया स्वयं वे लायें ।
जभी चाहें लुप्त हो जाते, निज इच्छा से दिख वे पाते ।
सिद्धि अन्तर्धान कहलाई, उन जैसी न अन्य में भाई ।
इसी सिद्धि के अन्य स्वामी, उस वन में कुछ रहते नामी ।
जिन के दर्शन राम कर पाय, राम के दर्शन उन कर पाय ।

दो०–शून्य वनों में जान लो, योगिन का है वास ।
इसी सिद्धि के कारणे, जन जा सकें न पास" ।। 4218

साध सुनी जब सारी बात, कहन लगा "हे जग के त्रात ।
मेरे मन है सकल समाया, जो कुछ तुम से मैं सुन पाया ।
मुझे कथें अब हे भगवान, किस रीति से हों अन्तर्धान" ।
कहा नाथ "मैं रीति बताऊँ, शास्त्रों में जिमि वर्णित पाऊँ ।
उस को समझो ध्यान लगाय, अति गुप्त यह ज्ञान कहलाय ।
देह में ग्राह्य शक्ति लो जान, दृष्टि मध्य ग्रहण को मान ।

योगी पास जो शक्ति अनूप, 'संयम' कर के देह के रूप ।
गाह्य शक्ति को लेत संहार, मिले नहीं दृष्टि को आधार ।

दो०-दृष्टि देख न तब सकत, उस योगी का रूप ।
कर 'संयम' जिस रूप पर, कीना योगी गूप" ।। 4219

सुन कर नाथ का यह संवाद, साध भया वह चकित अगाध ।
कैसी अद्भुत विद्या भाई, सरल रूप सद्गुरु बतलाई ।
अब न रहा संशय मन लेश, दीन दयाल ये गुरु महेश ।
पुनः प्रश्न उस ने कर दीना, मिले जिमि कुछ ज्ञान नवीना ।
कहा साध "हे सद्गुरु देव, आप से जानन चाहूं भेव ।
भूत काल का होवे ज्ञान, यह बतलाया आप भगवान ।
[1]हो सके क्या अनागत बोध, इस का भी दें मुझ को बोध ।
त्रिकालज्ञ जन योग से होय, ऐसा कथन करे हर कोय ।
इस को स्पष्ट करें मम नाथ, श्रवण करूं स्थित हो तव साथ"।
कहा नाथ "जो कीन सवाल, उत्तर दूं तुझ को इस काल ।

दो०-योगी जन को होत है, तीन काल का बोध ।
'संयम' जब जन करत है, रहत न कुछ दुर्बोध" ।। 4220

कहा साध "प्रभो करें स्पष्ट, और भ्रांत मम होय नष्ट ।
भविष्य काल को जानन हेत, कहां पर संयम हो अभिप्रेत" ।
स्वामी बोले "हे महाभाग, कर्म में जब जन जाये लाग ।
सकल उपायों का कर ध्यान, कर्म करे जब कोई सुजान ।

---

[1] अनागत = भविष्य काल
सोपक्रम निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा (योग दर्शन III.22)
अर्थ- कर्म सोपक्रम (उपाय जान कर आरंभ किया हुआ) और निरुपक्रम (उपाय जाने बिना आरंभ किया हुआ) दो प्रकार का होता है । उसमें संयम करने से भविष्य का ज्ञान होता है । अथवा अनिष्टों पर संयम करने से ।

वह 'सोपक्रम' कर्म कहलाय, उस से सफलता जन पा जाय ।
उपाय को न ध्यान में लाय, कर्म वही 'निरुपक्रम' कहाय ।
योगी 'संयम' से ले जान, भविष्य काल का फल पहचान ।
प्रतिभा योगी में जो होय, दिव्य दृष्टि कहलावे सोय ।

दो०-योगी को सब दीखता, कर्मों का परिणाम ।
'संयम' से वह जान ले, फल जो देगा राम ॥ 4221

हे साधो अब तुम चलि जाओ, प्रातः काल यहां फिर आओ" ।

दिन त्रयीसवां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, उसी प्रसंग को उस चलाया ।
कहन लगा "हे नाथ प्यारे, योगिन के सब कर्म न्यारे ।
भूत भविष्य की वे लें जान, 'सयंम' से आप कीन बखान ।
सब सरल विधि से करें स्पष्ट, सर्व भ्रांति भये जिमि नष्ट" ।
कहा नाथ "तुम लो यह जान, सामान्य मति भी ले पहचान ।
किस कर्म का फल क्या होय, उसे बखान करे हर कोय ।
इसी नियम से योगी जाने, 'संयम' से [1]अदृश्य पहचाने ।
एक दृष्टांत सुनो तुम तात, समझ पाओगे मेरी बात ।

दो०-बात योग की स्पष्ट हो, सुन कर यह दृष्टांत ।
करिये मनन ध्यान से, दूर भयेगी भ्रांत ॥ 4222

इक पुरुष ने वृक्ष पै देखा, लकड़ी काटता बालक पेखा ।
जिस शाखा पर था आसीन, उसी को काटत बुद्धिहीन ।
माना चित्त में पुरुष क्लेश, बालक को न ज्ञान है लेश ।
शाखा सारी जब कट जाय, बालक गिर कर चोट को खाय ।

[1] अदृश्य = भविष्य

उसने बालक को समझाया, बालक निज मर्जी कर पाया ।
होनी को था वह कह पाया, हुआ वही जो उस बतलाया ।
इस विध योगी कर्म को देख, भावी को वह लेत उल्लेख ।
क्या बात तव मनन में आई, भ्रांति भी क्या दूर हो पाई ।

दो०-योग विभूतिन साध जी, मिलें उसी को मीत ।
आजीवन कर योग को, वृत्तिन को ले जीत" ।। 4223

कहा साध "हे सद्गुरु देव, विभूतिन का मिल पाया भेव ।
आगे का कुछ होवे ज्ञान, वह भी मुझ को दो भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, पूर्ण विभूतिन का किसे ज्ञान ।
योगी स्वयं भी न कथ पाये, अपनी विभूति न प्रकटाये ।
[1]एक बात विशेष कह पाऊँ, मैत्र्यादिन का बल जतलाऊँ ।
चार गुण जो प्रथम कथ पाय, योगी जन वह सदा अपनाय ।
[2]साध करे जब संयम उन में, बल सभी का बढ़ेगा उसमें" ।
बोला साध "हे नाथ दयाल, आज्ञा हो तो करुं सवाल ।
कौन से गुण वे हैं मम नाथ, कैसा बल बढ़ता उन साथ ।

दो०-'संयम' से बल बढ़त है, किन का हे मम नाथ ।
कैसा वह बल है प्रभो, सुन पाऊँ इस साथ" ।। 4224

कहा नाथ "हे साध सुजान, 'मैत्री''करुणा' का तुझे ज्ञान ।
'मुदित' 'उपेक्षा' भी तुम जानो, यही चार तुम गुण पहचानो ।
'संयम' हो जब इनमें भाई, इन की शक्ति बहुत बढ़ जाई ।

---

[1] योगी निम्नलिखित चार गुणों को अपना कर जग का महान कल्याण करने में सामर्थ्यवान होता है – चार गुण ये हैं – मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ।
देखो – योग दर्शन I.33 और दोहा संख्या – 4088 – 4089

[2] मैत्र्यादिषु बलादीनि (योग दर्शन III.23)
अर्थ– मैत्री आदि (I.33) में संयम करने से मैत्री आदि का प्रबल बल प्राप्त होता है ।

मित्र दृष्टि सुखी पै होय, सुख अपार पाये तब सोय ।
दुखी पै करुणा जब कर पाय, उस का दुख सब हवा हो जाय ।
योगी पुण्य कर्म को देखे, हर्षित होकर उसको पेखे ।
पुण्य कर्म तब जग विस्तारे, शक्ति योग की जग को तारे ।
अपुण्य कर्म जन होता पाय, योगी के मन उपेक्षा आय ।
जग को अपुण्य से हो ग्लानि, अपुण्य कर्म की होवे हानि ।

दो०–नाश अपुण्यों का भये, योगी के संकल्प ।
योगी जिस जा बसत है, पाप रहत न अल्प ।। 4225क
हो योगी का वास जब, जो ध्यान में निष्ठ ।
पावन वह थल होत है, तरते मित्र इष्ट'' ।। 4225ख

सुना नाथ से दिव्य यह ज्ञान, कहा साध ने ''हे भगवान ।
जो गुण आपने कीन बखान, सभी आप में हैं विद्यमान ।
दास रह कर आप की सेव, धन्य भया है हे गुरुदेव ।
योग विभूतियां कुछ बखानी, और बताओ जग कल्याणी'' ।
कहा नाथ ''हे साध प्यारे, नहीं सकूं मैं कथ गुण सारे ।
'संयमी' योगी जो कहायी, पुरुष विशेष वही है भाई ।
उसकी शक्ति असीम लो जान, ईश्वर सम उस को लो मान ।
जभी निज बल बढ़ाना चाहे, हाथी सम देह में बल लाये ।

दो०–[1] हो सकता बलवान वह, हस्ती जैसा मीत ।
'संयम' जब वह करत है, ऐसा लो मन चीत'' ।। 4226

पूछा साध ''हे नाथ महान, यह तथ्य मैं लीना जान ।

[1] बलेषु हस्तिबलादीनि (योग दर्शन III.24)
अर्थ– हस्तीआदि के बलों में संयम करने से हस्ती आदि का बल प्राप्त होता है ।

एक बात यह भी बतलायें, किस रीति सभी बल ये पायें" ।
कहा नाथ "सायं चलि आना, जो पूछा वह तब सुन पाना" ।

दिन त्रयीसवां (सायं)

सायं काल साध जब आया, उसने प्रश्न वही कर पाया ।
"हे नाथ मैं जानन चाहूं, ज्ञान जिमि मैं योग का पाऊँ ।
कैसी रीति वह है भगवान, हस्ती सम मिले बल भगवान" ।
कहा नाथ "यह रहस है गूढ़, समझे वही जो भक्त अमूढ़ ।
पांच तत्व से सब जग जाया, ईश्वर ने यह जगत रचाया ।

दो०-ईश्वर के अधीन सब, पांच तत्व लो जान ।
जैसी रचन अभीष्ट हो, करे वही भगवान ।। 4227

तत्व भेद कर के भगवान, ईश्वर रचा यह विविध जहान ।
तत्व हैं ईश्वर के अधीन, रचना करे वह महाप्रवीन ।
तत्व विजेता योगी जान, उसे भी शक्ति दीन भगवान ।
तत्वों को करे निज अधीन, शक्ति बढ़ावे लो यह चीन" ।
बोला साध "समझ हूं पाया, ज्ञान योग का जो समझाया ।
ईश्वर रचना जिमि कर पाये, योगी 'संयम' से कर पाये ।
अब तुम को कुछ और बताऊँ, विभूति योगी की कथ पाऊँ ।
शक्ति योगी में वह आय, दूरस्थ घटना भी दिख पाय ।
[1]अथवा प्रकट न हो जो बात, योगी जान वह ले भी तात ।

---

[1] प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् (योग दर्शन III.25)
अर्थ– प्रवृत्ति (मन की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति और संयम की शक्ति) के प्रकाश डालने से सूक्ष्म (इन्द्रियातीत), व्यवहित (आड़ में रहने वाली) और विप्रकृष्ट (दूर की) वस्तु का ज्ञान होता है ।

दो०–'विप्रकृष्टव्यवहित' को, योगी लेता जान ।
सूक्ष्म तत्व भी देख ले, उसमें शक्ति महान" ॥ 4228

साध बोला तब "हे भगवान, आप से लूं मैं यह भी जान ।
ऐसी रीति कौन सी देव, प्रकटे योगी को यह भेव ।
ऐसा विलक्षण यह है ज्ञान, घर बैठे ही ले सब जान ।
यह भी इस के साथ बतायें, इस का को दृष्टांत सुनायें ।
मन में बैठे तब यह बात, अन्यथा न विश्वास हो तात" ।
कहा नाथ "है प्रश्न यह ठीक, ज्ञान दृढ़े अनुभव की लीक ।
कुरु भूमि के युद्ध की भाई, संजय ने जिमि कथा सुनाई ।
घर बैठे उस सब कुछ देख, युद्ध भूमि के दृश्य को पेख ।
धृतराष्ट्र को सभी बतलाये, योग की सिद्धि यही कहाये ।

दो०–दूर घटी सब घटन को, योगी देखे मीत ।
ऐसी सिद्धि योग की, है जग को प्रतीत" ॥ 4229

कहा साध "मैं पढ़ है पाई, कथा यह प्राचीन सुहायी ।
अर्वाचीन यदि हो को नाथ, वह बतला कर करें सनाथ" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, प्रभु के अद्भुत चरित न्यारे ।
राम लाल बहु सिद्ध बनाये, रामा की अति गाथ सुहाये ।
[1] वही सुनाऊँ तुम को मीत, जिससे हो तब दृढ़ प्रतीत" ।
कहा साध "हे मम नाथ, वही सुनाओ मुझ को गाथ ।
दूर की वार्ता लेवें जान, यह है सिद्धि महान भगवान ।
रामा की क्या गाथ है नाथ, अवश्य सुनायें इस के साथ ।

दो०–रामा की जो गाथ है, सुनना चाहूं नाथ ।
वर्णन उस का कीजिये, करिये मुझे सनाथ" ॥ 4230

[1] देखो रामा की गाथ – दोहा संख्या 425–438

कहा नाथ "हे साध प्यारे, सुनिये उस के चरित न्यारे ।
आशुतोष इक जज था भारी, रामा उसकी नार प्यारी ।
बंगदेश के वासी तात, प्रभु मिले उन को इक प्रात ।
निःछल सेवा वे कर पाये, कृपा कर प्रभु ने अपनाये ।
रामा पाया योग का दान, रहती समाधि में गुलतान ।
कुछ काल प्रभु वहां बिताया, चलने का फिर मन में लाया ।
बिछोड़ा प्रभु का न सह पायी, रामा ने निज हठी जतायी ।
इक दिन प्रभु रुक ही पाये, शिष्य अधीर न जिमि हो पाये ।

दो०-भयी प्रातः उठे प्रभु, आहट कीन न लेश ।
त्याग दीन उन गेह को, अन्य चाले प्रदेश ।।423क
रामा पड़ी समाधि में, लीना उस सब जान ।
तभी जगाया निज पति, तुरत कीन प्रयान ।।423ख
इतनी गाथ सुनाय कर, भये स्वामी मौन ।
प्रभु प्रेम उन मन बसा, समझ सके वह कौन" ।।423ग

स्वामी जी फिर आंख उघारी, तभी साध से गिरा उचारी ।
"आना कल तुम हे मम तात, जभी भयेगी उदय प्रात" ।

दिन चौबीसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, स्वामी तब प्रसंग चलाया ।
"हे साध मैं तुझे बतलाया, प्रस्थान प्रभु किमि कर पाया ।
समाधि में ही रामा जाना, किधर गये हैं प्रभु अनुमाना ।
उसी दिशा को वह चल पायी, योग सिद्धि की थी प्रभुतायी ।
तन से थी वह पथ पर चलती, मन में प्रभु का ध्यान वह करती ।
प्रभु ने उस का प्रेम जो देखा, दयाधार कर किया उल्लेखा ।

अब न ढूंढन और यह पावे, कल को दर्शन करके जावे ।

दो०-ऐसा मन में धार कर, प्रभु रुके इक स्थान ।
देखा रामा ने जभी, सोई प्रभु के ध्यान ।। 4232

प्रात भई रामा उठ पायी, रात्रि थी उस ध्यान बितायी ।
सिमिर प्रभु फिर चलने लागी, ध्यान की ज्योति उस मन जागी ।
जिस दिक् प्रभु को ध्यान में पाती, उसी दिशा में कदम बढ़ाती ।
मध्य दिवस में वहां जा पाय, जहां थे प्रभु ने आसन लाय" ।
रामा का प्रसंग बतलाय, स्वामी जी यह पुनः कथ पाय ।
"योग सिद्धि का यह प्रमाण, हुआ प्रभु के चरण में आन ।
यदि और कुछ होय तव चित्त, पूछ लेवो तुम इसी निमित्त ।
अत्युक्ति नहीं लेवों मान, अनुभव का है सारा ज्ञान ।

दो०-सब विभूतियां योग की, संयम से हों सिद्ध ।
बिना संयम न मिल सकें, शास्त्रन में प्रसिद्ध" ।। 4233

सुन कर नाथ की बात स्पष्ट, भ्रांत भयी तब साध की नष्ट ।
कहन लगा "हे सद्गुरुदेव, मुझे बतावें यह भी भेव ।
दूरस्थ वस्तु देखन हेत, रीति कौन सी है अभिप्रेत" ।
कहा नाथ "सुन लो तुम भाई, योग में रीति जो कथ पाई ।
वही बतलाऊँ तुम को मीत, सुनना ध्यान से ला कर चीत ।
मानसिक ज्योति का प्रवाह, संयमी में जो होत अथाह ।
वही ज्योति सब देखन हारी, देख सकती वह सृष्टि सारी ।
प्रवृत्ति वृत्ति की जहां जाये, सन्मुख वस्तु वही आ जाये ।

दो०-संयमित वृत्ति जब करे, योगी परम प्रवीण ।
जो चाहे वह देखना, ले सकल दृश्य चीन" ।। 4234

सुन कर नाथ की सारी बात, बोला साध "हे जगत त्रात ।
स्पष्ट भया मुझ को यह ज्ञान, परन्तु प्रश्न और भगवान ।
कहां तक दृष्टि दिव्य यह जाय, सीमित कहां तक रह वह पाय ।
भू लोक के दृश्य ही देखे, अथवा बाहिर के भी पेखे" ।
सुन यह नाथ दीन मुस्काय, और कहा "मम बात तव भाय ।
तुम ने बात जो पूछी तात, योगी को दिव लोक साक्षात ।
यहां तक सीमित ही न होय, उस से बाहिर भी जाय सोय ।
[1] चांद पै वृत्ति जभी जमाय, ज्ञान नक्षत्रों का वह पाय ।
[2] संयमित वृत्ति ध्रुव पै होय, सितारों की सब गति को गोय ।

दो०- चाल सितारों की सभी, देखे योगी सिद्ध ।
त्रिलोक द्रष्टा योगी, शास्त्रन में प्रसिद्ध" ।। 4235

सुन कर साध सकल उपदेश, कहन लगा "हे गुरु सर्वेश ।
विश्व द्रष्टा योगी होय, संशय नहीं मम मन में कोय ।
[3] एक बात मैं जानन चाहूँ, जिमि ज्ञान कुछ 'हठ' का पाऊँ।
देह की जो प्रक्रिया होय, योगी समझे वह भी सोय ।
बहत्तर कोटिन नाड़िन जाल, उस का भी वह जाने हाल ।
यह किस रीत से हो भगवान, इस का भी मैं चाहूं ज्ञान" ।
सुन कर साध की यह जिज्ञास, नाथ के आई मुख पै हास ।
और कहा "यह अजीब सवाल, प्रकट भये किमि देह का हाल ।

---

[1] चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् (योग दर्शन III.27)
अर्थ- चन्द्रमा में संयम करने से ताराओं के व्यूह का (नक्षत्रों के स्थान विशेष का) ज्ञान होता है ।

[2] ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् (योग दर्शन III.28)
अर्थ - ध्रुव में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है ।

[3] हठ = हठयोग; शारीरिक साधन आदि ।

दो०–बिना काटे बिन छांटे, योगी को हो ज्ञान ।
देह के सूक्ष्म तन्तु भी, देखे योगि सुजान ।। 4236क
सुन लेनी इस की विधि, आवोगे जब शाम ।
अब तो वेला है भया, करने का आराम" ।। 4236ख

इस विध बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन चौबीसवां (सायं)

जब शाम को साधु चलि आया, तभी नाथ प्रसंग चलाया ।
और कहा "हे साध सुजान, तेरे प्रश्न का करूं बखान ।
बिना काटे बिन छांटे जोय, योगी देह का ज्ञान जो गोय ।
[1]उस की रीति हो जो मीत, सुनो ध्यान से वह सप्रीत ।
तन के व्यूह का होता ज्ञान, संयमित नाभि में जब ध्यान ।
शरीर का केन्द्र नाभि कहाय, इकाग्र मन जब वहां हो पाय ।
सकल नाड़िन का होवे बोध, योगी को जो परम सुबोध ।

दो०–ज्ञान सकल हो देह का, उस योगी को मीत ।
नाभि में धरे ध्यान जो, हो संयम सप्रीत" ।। 4237

सुन नाथ का सकल उपदेश, कहा साध "हे मम हृदयेश ।
योग विभूति आप से जानी, है विलक्षण यह महादानी ।
इस विषय जो और हो ज्ञान, वह भी कथन करें भगवान ।
चमत्कार सुन योग के नाथ, बढ़े जिज्ञासा उस के साथ ।
आप समुद्र ज्ञान के देव, मिले ज्ञान रह आप की सेव" ।
कहा नाथ "अब मैं कथ पाऊं, एक विभूति और बतलाऊं ।

[1] नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् (योग दर्शन III.29)
अर्थ– नाभिचक्र में संयम करने से शरीर के व्यूह का ज्ञान होता है ।

[1]योगियों को न भूख सतावे, प्यास भी उन को न लग पावे ।
संयम से व सिद्ध महान, भूख प्यास से न परशान ।

दो०-विशेषव्याकुल न भये, भूख आदि से मीत ।
योगी में यह सिद्धि है, ले क्षुधा को जीत" ।। 4238

कहा साध "हे गुरु महाराज, यह रहस्य भी जानूं आज ।
योगी संयम कहां कर पाय, जिससे उसमें गुण यह आय" ।
कहा नाथ "सुन लो मम मीत, भूख प्यास ले योगी जीत ।
कण्ठ कूप में ध्यान लगाना, और वहीं संयम कर पाना ।
मिले इस से वह सिद्धि भाई, भूख प्यास न हो दुख दाई" ।
सुन कर साध ने कीन सवाल, "सद्गुरु आप हैं परम दयाल ।
जिसने ऐसी विधि बतलाई, क्षुधा पिपास लेय विदाई ।
बतावें मुझ को पर यह भेव, देह का पोषण किमि हो देव ।

दो०-अन्न बिना न देह रहे, जानें सब ही लोग ।
देह टिका तब ही रहे, उसे मिले जब भोग" ।। 4239

कहा नाथ "तुम जो कथ पाया, यह न प्रश्न किसी कर पाया ।
अन्न बिना किस विध रह पायें, समाधि में जो योगी जायें ।
रहसमयी यह सचमुच बात, सभी विधाता की करामात ।
चार अवस्था तन की भाई, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति कहाई ।
समाधि है चतुर्थ प्रकार, भिन्न सभी में देह के कार ।
बदलें नाड़ियों के सब कर्म, ग्रंथियों के भी बदलें धर्म ।
संयम अवस्था जब हो पाय, अमृत ग्रंथियों से रिस पाय ।
अमृत से हो देह की पुष्टि, मन में भी तब रहत संतुष्टि ।

[1] कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः (योग दर्शन III.30)
अर्थ– कण्ठ कूप में संयम करने से क्षुधा और पिपासा (भूख प्यास) की निवृत्ति होती है।

दो० – [1] संयम अवस्था हो जब, ग्रंथियां करें स्राव ।
अमरित रस का देह में, रहे न लेश अभाव ।। 4240

हे साध तुम लिया है चीन, क्यों समाधि में न तन हो क्षीन" ।
कहा साध "मैं लीना जान, सिद्धों के गुण लीन पहचान ।
उन की समता को कर पाय, सिद्ध तो ईश्वर ही हो जाय ।
आगे का मैं चाहूँ ज्ञान, कथन करिये अब हे भगवान" ।
कहा नाथ "गुण और बताऊं, जिस की समता कहीं न पाऊं ।
उस के बिना न साधन होय, समाधि में बैठ सके न कोय ।
स्थिर आसन में बैठन हेत, इस की सिद्धि है अभिप्रेत" ।
बोला साध "वह कौन उपाय, जिसके बिना न योग हो पाय ।

दो० – चाहूँ सुनना नाथ जी, योग का वह विधान ।
जिस साधन से हे प्रभो, मिले योग का दान" ।। 4241

कहा नाथ "तुम कल चलि आना, यही प्रश्न तुम तब कर पाना ।
इस का ज्ञान मिले तब मीत, बढ़े योग में तेरी प्रीत" ।
ऐसा बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन पचीसवां (प्रातः)

प्रातः काल साध आ पाया, और नाथ से कह वह पाया ।
"हे नाथ वही कहिये उपाय, समाधि में जो होय सहाय ।
जिस का कीना आप बखान, सायं काल था हे भगवान" ।
[2] बोले नाथ "शास्त्र कथ पाय, कूर्मनाड़ी में ध्यान लगाय ।

---

[1] जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि की अवस्थाओं में देह के भीतर अवस्था अनुसार भिन्न 2 प्रक्रियायें होती हैं । समाधि अवस्था में देह की कुछ ग्रंथियों से अमृत रस का स्राव होने लगता है और उस अमृत स्राव से देह पुष्ट रहता है ।

[2] ,कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् (योग दर्शन III.31)

अर्थ – कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता होती है । (नाभि के पीछे कूर्म नाड़ी का स्थान है ।)

स्थिरता उसमें ऐसी आय, दीर्घ काल स्थिर बैठ दिखाय ।
विष्णु का जो स्थान है भाई, उसी संग जो नाड़ी स्थायी ।
वह तू कूर्म नाड़ी पहचान, और दृढ़ाना उस पर ध्यान ।

दो०-संयमित रख सदैव ही, उस नाड़ी पर चीत ।
उस योगी का जान लो, दृढ़ आसन हो मीत" ।। 4242

बोला साध "मैं लीना जान, स्थिरता का उपाय पहचान ।
इस में रहस्य जो होय नाथ, वह बतला कर करें सनाथ" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, इस रहस्य को जानें सारे ।
कमर जभी जन की झुक जाय, आसन शिथिल तभी हो पाय ।
नाभि चक्र पर टिके जो ध्यान, दृढ़ता कमर में आय सुजान" ।
कहा साध "जो रीत बताई, मम समस्या आप सुलझाई ।
दृढ़ आसन का यह अभ्यास, कर पाऊँ मैं सह विश्वास ।
हे नाथ अब और बतायें, योग विभूति पुनः कथ पायें ।

दो०-यौगिक सकल विभूतियां, उन का है न अन्त ।
प्रकट न उन को वे करें, योगी जन जो सन्त" ।। 4243

कहा नाथ "तू ठीक बखाना, योगी का स्वभाव तू जाना ।
योगी न अहंकार में आय, निज शक्ति नहीं कभी कथ पाय।
सिद्धि और जानों तुम मीत, योगी को जो होय प्रतीत ।
[1]संयम मूर्धा में कर पाये, दर्शन सिद्धों के कर पाये ।
योगी उच्चाकाशी रहते, मूर्धाकाशी ध्यान लगाते ।
वहां पर प्रकटे दिव ज्योत, अलौकिक जिस का हो उद्योत ।
उस पर संयम जब कर पाये, सिद्धि प्रकट तभी हो जाये" ।

[1] मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् (योग दर्शन III.32)
अर्थ – मूर्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है ।

बोला साध "हे दीनानाथ, दृष्टांत कहें को इस के साथ ।
यह अलौकिक सिद्धि भगवान, न इस का तो था मुझ को ज्ञान ।

दो० - विभूति ऐसी नाथ मम, जग में दुर्लभ होय ।
सिद्धों की इस सिद्धि से, फल अमरत्व गोय" ।। 4244

कहा नाथ "तू ठीक बखाना, इस का फल महान है माना ।
सदुपयोग जो इस का होय, योगी अवश्य मोक्ष को गोय ।
[1] ऐसा इक दृष्टांत बताऊँ, गाथा राम प्रभु की गाऊँ ।
सद्गुरु राम प्रभु भगवान, असम देश में थे इक स्थान ।
वहां अवधूता का भी वास, नित्य चढ़ावे जो निज श्वास ।
सिद्ध अवस्था में अवधूता, रही न गर्व से पर अछूता ।
समाधि बैठ सिद्धों को पेखे, अपने मन में तभी उल्लेखे ।
मैंने उत्तम कर्म कमाये, कोई भी समता न कर पाये ।
पाया सिद्धों में मैं स्थान, मुझ में शक्ति उपजी महान ।

दो० - सिद्ध एक मुझ को मिले, वश मेरे हो जाय ।
मेरी सेवा में रहे, और कहीं न जाय ।। 4245

इतने में इक सिद्ध को पेखा, जिस को भू पर ही उस देखा ।
सूक्ष्म उस का बहुत तेजस्वी, समाधि स्थित था वह मनस्वी ।
मन में आया वश कर पाऊँ, अपने आश्रम में ले जाऊँ ।
मेरी सेवा में रह पाये, कृपा पात्र मेरा बन जाये ।
इस विध सोच वह जोर लगाय, वह नहीं उस के वश हो पाय ।
उसने वश धूता को कीना, और अशक्त उसे कर दीना ।
वह था हरिहरानन्द सिद्ध, सेवक प्रभु जी का प्रसिद्ध ।
सूक्ष्म उस का बांध वह लाया, प्रभु विराजे वहां वह आया ।

[1] देखों दोहा संख्या - 465 - 470

दो०-प्रभु समक्ष तब आय कर, कीनी उस अरदास ।
यह पुतला हे नाथ जी, दुखी करे तव दास ।। 4246

प्रभु जी ली सब बात पहचान, वह अभिमानी सिद्धा जान ।
उस को प्रभु जी ने समझाया, योग का लक्ष्य मोक्ष बताया ।
प्रभु फिर उस पर कीनी दाया, बंधन से था उसे छुडाया'' ।
स्वामी जी यह कथा सुनाई, और साध को बात बताई ।
''योग से सिद्धि जब आ जाये, स्वार्थ हित नहीं उसे लगाये'' ।
और कहा ''अब सायं आना, नया प्रसंग तभी सुन पाना'' ।

दिन पचीसवां (सायं)

सायं काल जब साधु आया, पूछ तभी वह यह कर पाया ।
''योगी को जन कहें सर्वज्ञ, छिपा न आप से कुछ हे तज्ञ ।
यदि यह सत्य नाथ है बात, योगी को किमि सब साक्षात ।

दो०-योगी को सब विदित हो, यदि सत्य यह बात ।
कौन साधन वह नाथ जी, जिस से हो साक्षात'' ।। 4247

उस का प्रश्न सुना जब भारी, गुप्त बात उसे कही सारी ।
नाथ कहा ''हे साध सुजान, कहूं योग का गूढ़ जो ज्ञान ।
सृष्टि का होय कुछ भी ज्ञान, योगी से वह छिपा न जान ।
सृष्टि के जो रहस हैं भाई, वा जो सष्टा की प्रभुताई ।
[1]योगी की प्रतिभा में आये, संयम योगी जब कर पाये'' ।
सुन कर नाथ का यह उपदेश, पूछा साध ने ''हे हृदयेश ।
सृष्टि का तो ज्ञान ले जान, सके क्या अन्तर भी पहचान ।

[1] प्रातिभाद्वा सर्वम् (योग दर्शन III.33)
अर्थ - अथवा प्रातिभ ज्ञान से योगी सब कुछ जान लेता है ।

अन्तर बीच जो सृष्टि गुप्त, जन्म जन्मान्तर जिसमें लुप्त ।
उस को भी क्या जानन पाय, अथवा इस मिस और उपाय" ।
सुन कर वचन साध का नाथ, कहा "बतलाऊँ इस के साथ ।

दो०–[1] हृदय में कर पाये जो, योगी संयम साध ।
उसे ज्ञान हो चित्त का, जिमि पट खुले अगाध" ॥ 4248

सुन नाथ का दिव्य उपदेश, जिज्ञासा उपजी उस मन लेश ।
कहन लगा "हे नाथ महान, चित्त का कीना आप बखान ।
आत्म ज्ञान की इच्छा होय, संयम कहां करे जन सोय" ।
सुन कर साध की यह जिज्ञास, सद्गुरु लायी मुख पै हास ।
और कहा "हे साधो भाई, यह जिज्ञासा मन जो आई ।
प्रायः सब के मन में आय, कौन शक्ति सभी कर्म कराय ।
पांच तत्व का पुतला भाई, वास करे जो इस में आई ।
इन दोनों में न भेद लखाय, भोगें भोग इस जग में आय ।
दोनों में पर भिन्नता खास, इस विध करे जो दृढ़ विश्वास ।
[2] संयम भिन्नता में कर पाय, बोध पुरुष का तब हो जाय ।

दो०–द्रष्टा दृश्य के भेद में, संयम जब कर पाय ।
द्रष्टा का स्वरूप तब, योगी खुद लख पाय" ॥ 4249क
पूछ लिया तब साध ने, "हे योगिन के नाथ ।
इस ज्ञान उपरान्त फिर, क्या लागे जन हाथ" ॥ 4249ख

---

[1] हृदये चित्तसंवित् (योग दर्शन III.34)

अर्थ – हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है ।

[2] सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् । (योग दर्शन III.35)

अर्थ – चित्त और पुरुष जो परस्पर अत्यंत भिन्न हैं इन दोनों की प्रतीतियों का अभेद भोग है । उनमें से परार्थ प्रतीति से भिन्न जो स्वार्थ प्रतीति है उस में संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है ।

बोले नाथ "तू तार्किक साध, तेरी सोच में खोज अगाध ।
आत्म ज्ञान से क्या हो लाभ, पूछा न किसी हे अमिताभ ।
इस का लाभ तुझे बतलाऊँ, सरल विधि से कथन में लाऊँ ।
आत्म ज्ञान जो जन पा जाय, पाना फिर नहीं कुछ रह पाय ।
आत्मा को सर्वज्ञ लो जान, ईश्वर रूप तू योगी मान ।
संयम योगी जब कर पाये, उसमें दिव्य शक्ति चलि आये ।
उस का वर्णन सुन लो भाई, कथनी कथ न सके प्रभुताई ।

दो०-उस योगी की शक्तियां, किमि सकूं कथ साध ।
युक्त ईश्वर से आत्मा, रहत सदा निर्बाध ।। 4250

[1]उन का वर्णन जो चलि आय, श्रवण करो तुम अब मन लाय ।
इक शक्ति तुम 'प्रातिभ' जानो, दूजी 'श्रावण' है पहचानो ।
तीजी 'वेदन' ही कहलाये, फिर 'आदर्श' कथन में आये ।
पंचम को 'आस्वाद' लो जान, 'वार्ता' षष्ट शक्ति पहचान" ।
इन के नाम सुने जब साध, कहा नाथ "तव ज्ञान अगाध ।
प्रति शक्ति का भाव बतलायें, मम जिज्ञासा शांत करायें" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, इन के भाव गूढ़ हैं भारे ।
श्रवण करो तुम सब चित्त लाय, स्पष्ट भाव जिमि समझ में आय ।

दो०-लोकोत्तर ये शक्तियां, योगी जन के पास ।
योगी करत प्राप्त है, कर कठिन प्रयास ।। 4251

हे साधो अब तुम चलि जाओ, कल प्रात जब चल कर आओ ।
इन का भाव तुझे बतलायें, अगला ज्ञान तभी दे पायें" ।

---

[1] ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते । (योग दर्शन III.36)
अर्थ -उस स्वार्थसंयम के अभ्यास से 'प्रातिभ','श्रावण','वेदना','आदर्श','आस्वाद', और 'वार्ता' ज्ञान उत्पन्न होता है ।
प्रातिभ (prescience, in-sight), श्रावण (higher hearing), वेदना (higher touch), आदर्श (higher vision), आस्वाद (higher taste), वार्ता (higher smell)

दिन छबीसवां (प्रातः)

प्रातः काल साध जब आया, स्वामी जी ने तब फरमाया ।
"हे साध वह ज्ञान महान, जिस का था कल कीन बखान ।
उस का अब सुन लो विस्तार, योग में श्रद्धा को मन धार ।
[1] 'प्रातिभ' गुण जब योग से आय, सर्वज्ञाता जन हो जाय ।
अतीत अनागत का हो ज्ञान, अति सूक्ष्म को भी ले पहचान ।
दूर स्थान पर जो कुछ होय, ज्ञात हो योगी को सब सोय ।

दो०–सब योगी को ज्ञात हो, भूत भविष्यत साध ।
व्यवहित भी वह जान ले, लेय योग आराध ।। 4252

[2] 'श्रावण' की अब बात बताऊँ, उस का भाव तुझे समझाऊँ ।
दिव्य ध्वनि योगी सुन पाय, सुख सागर में तभी समाय ।
दूरस्थान में होती बात, सुन सकता वह योगी तात" ।
सुना साध यह सब उपदेश, कहा उसने "हे मम हृदयेश ।
आश्चर्यजनक सभी विज्ञान, योगी पावे जिस का ज्ञान ।
मम जिज्ञासा बढ़ती जाये, और आप से सुनना चाहे ।
कर किरपा अब और सुनायें, योगी का गुण और बतायें" ।
[3] कहा नाथ "सुन लो तुम मीत, 'वेदना' का गुण सुन सप्रीत ।

दो०–'वेदना' का गुण जो कथा, उस में सुख महान ।
योगी ही वह जानता, उसको ही पहचान ।। 4253क

---

[1] प्रातिभ = मन में सूक्ष्म (अतीन्द्रिय), व्यवहित (छिपी हुई), विप्रकृष्ट (दूरस्थ), अतीत और अनागत वस्तुओं के जानने की योग्यता ।

[2] श्रावण = श्रोत्रेन्द्रिय को दिव्य और दूर के शब्द सुनने की योग्यता ।

[3] वेदना = देह में दिव्य स्पर्श की प्रत्यक्ष अनुभूति ।

योगी को यह भासता, संग उसी भगवान ।
माता की जिमि गोद में, बालक हो अनजान ।। 4253ख

अब मैं तुम को वह बतलाऊँ, अलौकिक शक्ति इक कथ पाऊँ ।
[1] दिव्य रूप उस को दिख पाये, वह शक्ति 'आदर्श' कहलाये ।
देवी देवों का साक्षात, होवे योगी को बिन बात ।
उन से बात चीत कर पाये, दिव्य लोक भी देख वह आये ।
[2] सुनिये अब 'आस्वाद' की बात, दिव्य रस रसना को हो प्राप्त ।
ऐसे रस रसना पै आयें, जिन की कल्पना न कर पायें ।
[3] और शक्ति जो है कथ पायी, संज्ञा 'वार्ता' की है आयी ।
घ्रानेन्द्रिय में शक्ति समाये, दिव्य सुगंध सूंघ वह पाये ।

दो०-यही अलौकिक शक्तियां, घट योगी के होंय ।
संयम जब योगी करें, सभी सहज में गोंय" ।। 4254

ध्यान से साध सब सुन पाया, भाव उसके तभी मन में आया ।
योगी के घट सब कुछ होय, उन से लाभ जो चाहे गोय ।
दृष्टांत यदि मिल कोई पाय, विश्वास मम तब दृढ़ हो जाय ।
सोच इमि उस कीन अरदास, "हे नाथ मैं अज्ञ हूं दास ।
मम विश्वास दृढ़ानें हेत, क्या दृष्टांत न को अभिप्रेत ।
चाहूँ मिले को पुरुष महान, जिसमें शक्तियां हों भगवान" ।
श्रवण करी जब उस की वाणी, हंस पड़े सद्गुरु कल्याणी ।
और कहा "हे योग जिज्ञासु, योगी यश के नहीं पिपासु ।

दो०-सिद्धियों का प्रमाण जो, मिले न तुझ को मीत ।
प्रकट न करते योगिजन, सिद्धि किसी भी रीत ।। 4255

[1] आदर्श = नेत्रेन्द्रिय की दिव्य रूप देखने की योग्यता ।
[2] आस्वाद = रसनेन्द्रिय की दिव्य रस जानने की योग्यता ।
[3] वार्ता = घ्रानेन्द्रिय की दिव्य सुगंध सूंघने की योग्यता ।

तेरे चित्त में है जिज्ञास, शांत करूं कह बात यह खास ।
बीती अपनी तुझे बताऊँ, राम प्रभु की दया जताऊँ ।
अमृतसर मैं समाधि आसीन, प्रभु के ध्यान में मन था लीन ।
भक्तन मध्य मैं देखो नाथ, सहारनपुर जनता के साथ ।
अमृतसर प्रभु जी था आना, भक्त कहें न प्रभु जी जाना ।
श्री प्रभु जी कह दी उन को 'हां', वह आ पड़ी मम कान में 'हां' ।
प्राण नाथ का रुकना जान, निकल चले थे मेरे प्राण ।
उसी क्षण आया प्रभु का हाथ, प्राण किये स्थित देह के साथ ।

दो०-देखो मैंने तब प्रभु, उन कीना प्रस्थान ।
निज आश्रम में आ गये, ठीक समय भगवान ।। 4256

साधो वेला बहुत विहाया, उठने का है मन में आया ।
सायं को फिर और सुनाऊँ, तव जिज्ञासा तृप्त कराऊँ'' ।

दिन छबीसवां (सायं)

सायं साध शीघ्र चलि आया, उस के मन आह्लाद समाया ।
सद्गुरु मेरे सिद्ध महेश, सिद्धियां उन में सकल अशेष ।
मुझ को उन अधिकारी जान, निज सिद्धिन का कीन बखान ।
उन रहस्य की बात बताई, धन्य धन्य गुरु की प्रभुताई ।
जो बतलायें अब वे आय, श्रवण करूं मैं ध्यान लगाय ।
इतने में सद्गुरु चलि आये, साध समक्ष बैठ वे पाये ।

दो०-समक्ष गुरु को देख कर, साध कीन प्रणाम ।
और कहा ''हे सद्गुरो, सिद्धिन के हो धाम ।। 4257क
जिन सिद्धिन का वर्णन, था कीन भगवान ।
निहित आप में वे सभी, लीना है मैं जान ।। 4257ख

और बतलायें हे भगवान, धन्य भयें सुन कर मम कान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, प्रभु की दया जो भई महान ।
उसके फलस्वरूप हि पाया, वर्णन जो था मैं कर पाया ।
और सुनो मुझ से अब मीत, प्रभु को रखकर तुम निज चीत ।
इक प्रात था ध्यानासीन, प्रभु के दर्शन में मन लीन ।
देखा प्रभु को रेल के साथ, पकड़ी रेल थी उन निज हाथ ।
इक पैर था रेल के ऊपर, दूजा प्लेटफार्म के ऊपर ।
देख दृश्य मैं भया बेहाल, जा रहे प्रभु कहां इस काल ।

दो०-कहां नाथ हैं जा रहे, छोड़ मुझे इस काल ।
खुल गया मम ध्यान तब, मम मन अति बेहाल ।। 4258

ध्यान से उठ चला मैं भाग, आया जहां प्रभु महाभाग ।
उसी दशा वहां प्रभु को देख, प्रणाम कर के कीन उल्लेख ।
मुझ को छोड़ सद्गुरु न जाओ, अपने संग मुझे ले जाओ ।
संग प्रभु ने मुझे बिठाया, प्रभु ध्यान में मैं रह पाया" ।
इस विध बीती नाथ कह दीन, प्रभु ध्यान तभी भये विलीन ।
साधु अचरज से रहा देख, मन ही मन वह करत उल्लेख ।
सिद्धि सर्व के नाथ हैं धाम, मम समक्ष बैठे उपराम ।
मुझ को मिल गया है भेद, योगी रहें जग से निर्वेद ।

दो०-योगी के घट सिद्धियां, सुगंध जिमि फुल मांझ ।
लेश नहीं अभिमान है, दिखावें नहीं जग मांझ ।। 4259

[1] जग जिन्हें सिद्धिन कर जाने, योगी तो 'उपसर्ग' हि माने ।
खुली नाथ की आंख तब देख, साधु ने फिर कीन उल्लेख ।

---

[1] ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः (योग दर्शन III.37)
अर्थ -वे उपर्युक्त सिद्धियां समाधि में उपसर्ग हैं, व्युत्थान में सिद्धियां हैं ।

"हे योगिवर सद्गुरु प्यारे, खुले बुद्धि के पट मम सारे ।
प्रकट भया है मुझ को आज, यहां योगेश्वर रहे विराज ।
सब संशय मम भये हैं दूर, नमन करूं मैं तुझे हजूर ।
प्रकट करूं किमि निज विश्वास, इतने शब्द न मेरे पास ।
अकिंचन सेवक मुझ को जान, मेरे दोष न चित्त में आन ।
मेरा न कोई और सवाल, पूछ सकूं जो मैं इस काल ।
केवल मम यह है अरदास, राखो शरणि सदा यह दास ।

दो०-इस नीमाने दास को, चरण शरण दो नाथ ।
प्रश्न करूं न और अब, समझ लीन सब गाथ" ।। 4260

इतना कह उस शीश झुकाया, ध्यान में बहु काल रह पाया ।
नयन खुले तब बोले नाथ, "भयी न साध सब पूरी गाथ ।
सिद्धियों का तो अन्त न मीत, और सुनो तुम कुछ सप्रीत ।
सिद्धियां इक से इक महान, उलझत नहीं उन में विद्वान ।
उलझ योगी जो उन में पाये, उस की प्रगति वहीं रुक जाये ।
इक और सिद्धि का सुन बखान, अलौकिक गुण योगी का मान ।
[1] निज चित्त को पर देह समाय, जो चाहे उस से करवाय" ।
सुन वह नाथ की अद्भुत बात, कहन लगा "हे जग के त्रात ।
यह अनोखी सुनी है बात, तन त्याग अन्य तन किमि जात ।

दो०-अपने तन को त्यागना, यह सुगम नहीं बात ।
किस उपाय से होत यह, हो स्पष्ट जगत्रात" ।। 4261

---

[1] बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः । (योग दर्शन III.38)
अर्थ - बंध के कारण को शिथिल करने से और विचरण के मार्ग को जानने से चित्त (सूक्ष्म शरीर) का दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है ।

बोले नाथ "हे साधो तात, पुनः आओगे जभी प्रात ।
इस का उत्तर तब तुम पाना, सावधान हो सब सुन पाना" ।

दिन सताइसवां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, उसे नाथ ने तब कथ पाया ।
"निज प्रश्न का उत्तर भाई, श्रवण करो उसे चित्त लाई ।
तन को कारावास लो जान, जीव बंधा इस में लो मान ।
संस्कारों की कड़ियां भाई, दृढ़ पाश हैं बहु दुखदाई ।
उन कड़ियों को तोड़न हारा, योगि सिद्ध को वीर न्यारा ।
संस्कारों का न जब तक क्षय, चक्र चौरासी का रहे भय ।

दो०-योगिवीर जब तोड़ दे, बंधन को हे साध ।
स्वेच्छा से वह विचरता, देह मुक्त निर्बाध ।।4262क
देह मुक्त जो हो गया, गुरु शिक्षा को पाय ।
परशरीर प्रवेश का, जानत वही उपाय" ।।4262ख

सुन स्वामी का यह उपदेश, साध कहा "हे मम हृदयेश ।
अद्भुत कर्म योगी कर पाय, उस की समता को कर पाय ।
और यदि कुछ होय बतलाना, मन्द जीव को हो समझाना ।
कर कृपा वह अवश्य बतायें, जीव अधन्य धन्य कर पायें" ।
नाथ कहा "हे साध प्यारे, भाग्यवान हम दोनों भारे ।
योगिजनों का करें बखान, सिमरें उन की विभूति महान ।
जैसे जैसे मैं कथ पाऊँ, शक्तिन का न अंत मैं पाऊँ ।
ईश्वर को कहें अकथ अपार, योगी का भी पायें न पार ।

दो०-योगी में जो सिद्धियां, ईश शक्ति का रूप ।
ईश्वर से वे प्राप्त हों, योगी ईश्वर रूप ।। 4263

एक सिद्धि अब कथूं महान, सिद्ध पुरुषों को उस का ज्ञान ।
ऊर्ध्व गती उन की हो जाये, स्पर्श न पग थल से कर पाये ।
बाधक उन को हो कुछ नाहीं, जल वा कण्टक जो जग माहीं ।
यदि इस का तुझे हो कुछ ज्ञान, कथन करो हे साध सुजान" ।
साध बोला "हे नाथ सुजान, ज्ञान के आप पयोध महान ।
आप ही मुझ को सकें बतला, मैं तो सकूं नहीं यह बतला ।
ऐसी सिद्धि कौन सी नाथ, सिद्ध योगी के लागे हाथ ।
कर किरपा मुझ को बतलायें, मम जिज्ञासा तृप्त करायें" ।
बोले नाथ "सुनो मम मीत, योगी लेत उदान जब जीत ।
[1] संयम वा उस पर कर पाये, भू से ऊपर चल दिखलाये ।

दो० – भू से ऊपर रह सके, जो विहंग की रीत ।
उठ सकता आकाश में, ले उदान को जीत ॥4264क
भूमि ऊपर जब चले, कंटक चुभें न लेश ।
स्पर्श करे न भूमि उसे, जल व कीचड़ लेश" ॥4264ख

सुनी नाथ की अद्भुत वाणी, कहा साध ने "जग कल्याणी ।
ऐसा किमि सकत होय नाथ, देह उठे पर पंख न साथ ।
ऐसा तो को जीव न पायें, पंख बिना जो उड़ दिखलायें ।
यदि दृष्टांत होय को नाथ, वह बतला कर करें सनाथ" ।
सुन कर साध की यह जिज्ञास, नाथ लाये तब मुख पर हास ।
कहा नाथ "तुम भूल हो पाय, मैं ने दिया था यह बतलाय ।
उदान की शक्ति देह उठाय, पंख बिना योगी उड़ जाय ।
सुनना चाहो तुम दृष्टांत, वह सुनो तुम चित्त कर शांत ।

---

[1] उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च । (योग दर्शन III.39)
अर्थ – संयम द्वारा उदान के जीतने से जल, कीचड़, और कांटों आदि में असंग रहना और उर्ध्व गति होती है ।

दो०-हे साध चित्त शांत कर, सुन विशेष यह बात ।
राम लाल के चरण में, होय सभी साक्षात ।। 4265

[1] गुरु खोज जभी राम पधारे, हिमगिरि चोटी थे पग धारे ।
महा प्रभु तभी लेने आये, गगन मार्ग फिर गुफा सिधाये ।
महा प्रभु जभी आते जाते, गगन मार्ग से सदा सिधाते ।
अन्य योगी जब आयें पास, महा प्रभु का स्थान जहां खास ।
उड़ आकाशी वे थे आते, वैसे ही वे लौट सिधाते ।
ऐसा यह प्रत्यक्ष प्रमाण, है स्वयं प्रभु जी कीन बखान ।
सद्गुरु से यही शिक्षा पाय, राम प्रभुं जब सवाईं आय ।
[2] सवाईं से तब उड़ कर धाय, हरिद्वार थे वहां से आय ।
ये सभी प्रत्यक्ष प्रमाण, निज देखी अब करूं बखान ।
गुरु भाई की बात बताऊँ, अपनी देखी मैं कथ पाऊँ ।

दो०-[3] आय दुभेटा गांव से, अमर नाथ इक बाल ।
प्रभु किरपा से रहत था, ध्यान मग्न बहु काल ।। 4266क
आसन उस का नित उठत, जब करत वह ध्यान ।
उस के मन था योग का, तीव्र वेग महान ।। 4266ख

हे साधो तुम सब सुन पाया, निज प्रश्न का उत्तर पाया ।
सायं को जब तुम चलि आओ, प्रसंग और हम से सुन पाओ" ।

दिन सताइसवां (सायं)

सायं काल साध जब आया, स्वामी जी ने पास बिठाया ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, पूछो और जो मन तिहारे" ।

---

[1] देखें दोहा 585 से आगे; दोहा 610 से आगे; दोहा 612 से आगे ।
[2] देखें दोहा 762 से आगे ।
[3] देखें दोहा 1404 से आगे ।

कहा साध "मैं बहु कुछ जाना, पूछूं मैं क्या अब भगवाना ।
एक बात मुझ को बतलायें, जन तेजस्वी किमि हो पायें ।
योग से तेज बढ़े इक साथ, किस विध होत है यह मम नाथ ।
यह समझूं मैं आप से बात, साधन करूँ मैं तव साक्षात ।

दो० – ऐसा साधन मैं करूं, तेज बढ़े मम देव ।
साधन रत मैं रह सकूं, रह आप की सेव" ।। 4267

नाथ साध की इच्छा जानी, बात स्वामी उस की मानी ।
और कहा "हे साध प्यारे, संयमी जन होंय जो भारे ।
तेज बढ़े उन का हे तात, परम रहस्य की है यह बात ।
[1] 'समान' प्राण पै संयम होय, तेजस्वी बन जाय जन सोय ।
बिना संयम के कुछ न होय, यही बात समझे हर कोय" ।
सत्य बात यह साध ली जान, संयम की ली महिम पहचान ।
कहन लगे फिर साध को नाथ, "संयमी की अनन्त है गाथ ।
जो सिद्धिन उस को मिल पायें, हम तुझे अभी और बतायें ।

दो० – संयम से जो सिद्धियां, शास्त्र करें बखान ।
सुन लो तुम भी साध जी, धर इधर ही ध्यान ।। 4268

[2] सिद्धि एक यह लो तुम जान, दिव्य शक्ति को पाते कान ।
दिव्य शक्ति जब कान ले पाय, दिव्य ध्वनि को सुन वह पाय" ।
सुन पायी जब सद्गुरुवाणी, कहा साध "हे जग कल्याणी ।
समझ सका नहीं मैं यह बात, दिव्य ध्वनि क्या होती तात ।
यह भी ज्ञान मुझे दे पावें, अज्ञ जीव को तज्ञ बनावें" ।
नाथ सुनी जब यह जिज्ञास, बोले मुख पै ला कर हास ।

---

[1] समानजयाज्ज्वलनम् (योग दर्शन III.40)
अर्थ – (संयम द्वारा) समान के जीतने से योगी का देदीप्यमान होना होता है ।

[2] श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् । (योग दर्शन III.41)
अर्थ – श्रोत्र और आकाश के संबंध में संयम करने से दिव्य श्रोत होता है ।

"हे साधो तुम लो यह जान, ध्वनि आकाश का गुण है मान ।
ध्वनि आकाश में सदा व्यापे, इन श्रोत्रों से न वह जापे ।

दो०-सर्वत्र रहे व्याप्त है, ध्वनि आकाशी जान ।
सुन सके न श्रोत्र यह, प्राकृत यही विधान ।।4269क
सुन सकता उस ध्वनि को, योगी जो पुमान ।
दिव्य श्रोत्र उस को मिले, संयम से लो जान" ।।4269ख

कहा साध "हे सद्गुरु मेरे, सत्य वचन ये सब हैं तेरे ।
चाहे जो ले इसे आराध, संयम करत कहां वह साध ।
दिव्य श्रोत्र उस का हो जाय, जिस से दिव्य ध्वनि सुन पाय" ।
नाथ कहा "तव बात है ठीक, शास्त्र में जो लिपित है लीक ।
वही बतलाऊँ तुम को साध, योगी ले वह लीक आराध ।
श्रोत और आकाश का मेल, उसी पै संयम होय अपेल ।
दिव्य श्रोत्र तब योगी पाय, दिव्य ध्वनि भी वह सुन पाय ।
अब तुम्हें कुछ और बताऊँ, सिद्धि खास इक मैं कथ पाऊँ ।

दो०-[1] विभूति अब जो मैं कथूं, दुर्लभ उस को जान ।
उस सिद्धि को पाय कर, उड़े गगन इन्सान ।। 4270

यह सिद्धी जो योगी पाता, गमन आकाशीं कर दिखाता ।
सद्गुरु राम लाल भगवान, इस के वे प्रत्यक्ष प्रमाण ।
उन के सद्गुरु शिव अवतारी, महा प्रभु की देह जिन धारी ।
उड़ आकाशी वे थे आये, राम लाल को जब मिल पाये ।
संयमी जन जिमि सिद्धि पायें, प्रक्रिया उस की अब बतायें ।
काया का संबंध जो होय, आकाश से कथा है जोय ।

---

[1] कायाकाशयो: संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् (योग दर्शन III.42)
अर्थ –शरीर और आकाश के संबंध में संयम करने से और हलके रुई आदि में समापत्ति करने से आकाश गमन सिद्धि प्राप्त होती है ।

उस पै संयम जब कर पावे, योगी में यह सिद्धि आवे ।
तन को रुई समान ही देख, उड़ा आकाशी निज को पेख ।
स्वेच्छा से वह उड़ दिखलावे, स्वामी सिद्धि का बन पावे ।

दो०–स्वेच्छा से जो उड़ सके, जानो उस को सिद्ध ।
यह सिद्धि है योग की, शास्त्रों में प्रसिद्ध ।। 4271

हे साधो मैं ने कथ पायीं, कुछ सिद्धियां जो तुम सुन पायीं ।
कल प्रात तुम फिर आ जाना, आगे का वर्णन सुन पाना" ।
इस विध बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन अठाइसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, आ कर उसने शीश झुकाया ।
और कहा "हे सद्गुरु मेरे, दिव्य वचन सुन पाये तेरे ।
सिद्ध पुरुष की सिद्धियां नाथ, वर्णन कर आप कीन सनाथ ।
अनेक सिद्धियों का कीन बखान, दिव शक्तियां वे सब भगवान ।
धारणा ध्यान समाधि जानूं, इन तीनों को 'संयम' मानूं ।
संयमी जो पुरुष हो पाय, सिद्धिन का अधिकारी कहाय ।
जिन सिद्धिन का कीन बखान, मुझ से नाम सुनो भगवान ।
विस्मृत न वे कहीं हो जायें, शिक्षा को न भूल हम पायें ।

दो०–शिक्षा को जो भूलता, शिष्य अधम लूं जान ।
आप कीन प्रदान है, दिव शिक्षा भगवान" ।। 4272

कहा नाथ "तू शिष्य सुजान, शिष्य धर्म की कीन पहचान ।
हे तात तुम सभी कथ पाओ, नाम सिद्धिन के अब सुनाओ ।
उन सिद्धिन के कथने हारे, वा उन के जो सुनने वारे ।
सभी पुण्य के भागी भाई, योगिन की यह दिव्य कमाई" ।

कहा साध "मैं धन्य हूं नाथ, देकर आज्ञा कीन सनाथ ।
[1] प्रथम सिद्धि जो आप बताई, 'प्रज्ञालोक' कथन में आई ।
मानवोत्तर बुद्धि को पाता, इस सिद्धि को जो अपनाता ।
[2] इस उपरान्त जो थी बताई, 'सर्वभूतरुत ज्ञान' कहाई ।

दो०-इस ज्ञान से योगिजन, जीव जन्तु का भाव ।
समझें उनके शब्द से, सिद्धी का प्रभाव ।। 4273

[3] और सिद्धि जो मैं सुन पाई, 'पूर्व जाति का ज्ञान' कहाई ।
प्राप्त यह सिद्धि जिसे हो जाय, पूर्व जन्म का ज्ञान वह पाय ।
[4] आगे सिद्धि आप बतलाई, 'परचित्त ज्ञान' इमि कहाई ।
इस सिद्धि का जिसे हो ज्ञान, चित्त अन्य का लेत पहचान ।
नाथ इक सिद्धि आप बताई, सुन जिसे मन चकित हो जाई ।
[5] 'अन्तर्धाम' नाम कथ पायें, देह स्थूल हवा हो जायें ।
[6] इससे आगे जो सुन पाया, 'ज्ञान अपरान्त' आप बताया ।
जिसमें सिद्धि यह चलि आये, अपनी मृत्यु जान वह पाये ।

दो०-अपनी मृत्यु जान लेय, होनी हो जिस काल ।
यह 'अपरान्त ज्ञान' है, जनाय अन्तिम काल ।। 4274

[7] 'मैत्रीबल' तुम सिद्धि बताई, आप से हि मैंने सुनं पाई ।
बल संचय जिस से हो पाये, जन जीवन में हार न खाये ।
[8] 'हस्तीबल सिद्धी' का ज्ञान, मिला आप से हे भगवान ।
हस्ती सम जन बल को पाये, परास्त उसे न को कर पाये ।
[9] 'सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्ट' ज्ञान, यह सिद्धि बतलाई भगवान ।

---

[1] योग दर्शन III.5, [2] योग दर्शन III.17, [3] योग दर्शन III.18, [4] योग दर्शन III.19, [5] योग दर्शन III.21, [6] योग दर्शन III.22, [7] योग दर्शन III.23, [8] योग दर्शन III.24, [9] योग दर्शन III.25

इस से जन में गुण वह आये, गुप्त वस्तु भी दृष्टि समाये ।
दूर की वस्तु नजर में आय, सूक्ष्म को पहचान वह पाय ।
यह सिद्धि जो आप बतलाई, ऐसी कभी न थी सुन पाई ।

दो०–ऐसी ऐसी सिद्धियां, जो बतलाईं आप ।
धन्य भया हूं नाथ जी, दूर भया संताप" ।। 4275

इतना स्वामी जी सुन पाया, था तब उन संतोष जताया ।
कहन लगे "हे साध सुजान, स्मरण भया तुम को बहु ज्ञान ।
शिष्य गुरु से सीख जो पाये, और उसे वह शुद्ध सुनाये ।
गुरु से आशिष को पा जाता, पा ज्ञान फिर धन्य हो जाता ।
इस विध आशिष गुरु से पाय, और निज सर को चरणि झुकाय" ।
नम्र भाव से साध उचारा, "नाथ निमाना शिष्य तिहारा ।
यह तो था इक मूढ़ अनजान, साधनों का तुम दीना ज्ञान ।
जिन से स्मरण शक्ति बढ़ पाई, भक्ति भी प्रभु चरणि उपजाई ।

दो०–साधन योग जभी किये, और प्रभु का ध्यान ।
स्मरण शक्ति बढ़ने लगी, यह जानूं भगवान" ।। 4276

कहा नाथ "तब बात है ठीक, चाले जन जो योग की लीक ।
तब हो सर्वांगीन विकास, यह तो योग का गुण है खास ।
और सिद्धि जो मैं बतलाई, स्मरण होय तो कह दो भाई ।
पर अब सायं काल हि आना, अब तो वेला बहुत विहाना" ।

दिन अठाइसवां (सायं)

सायं काल साध जब आया, बैठ वह सद्गुरु चरणि पाया ।
और कहा उस "नाथ प्यारे, स्मरण मुझे उपदेश तिहारे ।

[1] अगली सिद्धि जो कथ पायी, 'भुवन ज्ञान' कथन में आई ।
सभी लोकों का होता ज्ञान, यह सिद्धि जो पाये सुजान ।
इससे अगली सिद्धि नाथ, वह भी कथ मैं बनूं सनाथ ।
[2] सिद्धी 'ताराव्यूह ज्ञान', सुनी आप से मैं भगवान ।

दो०-इस सिद्धि को पाय जन, हो ज्योतिष प्रवीन ।
योग मूल है ज्ञान का, लीना मैंने चीन ।। 4277

स्मरण नाथ मुझ को है आई, एक सिद्धि जो आप बताई ।
[3] 'गति ज्ञान' तारों का देव, जो सुनी रह चरण की सेव ।
मानूं इस सिद्धी का लाभ, उठायें ज्ञानी जो अमिताभ ।
हे नाथ इक और जो सिद्धि, सुनी जिसकी है बहु प्रसिद्धि ।
[4] 'कायव्यूह' उस को लूं जान, देह का इस से मिलता ज्ञान ।
अगली सिद्धि आप बतलाई, जो 'क्षुत्पिपासा' निवृति आई ।
यह तो सिद्धि बहु सुखदाई, भूख प्यास न हों दुख दाई ।
[5] 'स्थैर्य सिद्धि' जो आप बताई, इस बिना नहीं योग स्थायी ।

दो०-स्थिरता के बिन योग तो, हो सकत नहीं नाथ ।
इस सिद्धि को पायकर, योगी होय सनाथ ।। 4278

[6] 'सिद्ध दर्शन' का कर बखान, सिद्धि आप इक कथी महान ।
सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार, इस से मिले आनन्द अपार ।
[7] अगली सिद्धि आप बतलाई, 'प्रातिभ ज्ञान' जो कथ पाई ।
इस सिद्धि का है फल महान, जिससे मिलता अखण्ड ज्ञान ।
[8] 'चित्त संवित' सिद्धि कथ पाई, कृपा कर थी नाथ बतलाई ।

[1] योग दर्शन III.26, [2] योग दर्शन III.27, [3] योग दर्शन III.28, [4] योग दर्शन III.29, [5] योग दर्शन III.30, [6] योग दर्शन III.31, [7] योग दर्शन III.32, [8] योग दर्शन III.33, [9] योग दर्शन III.34

अपने चित्त का ही जो ज्ञान, पाता इस से योगी सुजान ।
[1] 'पुरुष ज्ञान' सिद्धि सुन पाई, जो जीव को मोक्ष प्रदाई ।
'पुरुष ज्ञान' सिद्धि पा जाय, चौरासी चक्र से छुट पाय ।

दो०–जन चौरासी में पड़ा, छुट पाये भगवान ।
यदि तव किरपा से मिले, सिद्धि 'पुरुषज्ञान' ।। 4279

[2] अद्भुत सिद्धि आप बतलाई, 'परशरीरावेश' जो आई ।
यह सिद्धि जो योगी पाये, अन्य जन प्रवेश कर पाये ।
[3] विशेष इक सिद्धि का जो ज्ञान, उत्क्रांति जिसका है अभिधान ।
वह भी आप मुझे दे पाये, स्मरण मुझे अब आ वह पाये ।
योगी कहीं भी चल दिखाये, भूमि पर नहीं पैर टिकाये ।
ऐसा आप ने गुण बताया, अचरज मुझ को था हो पाया ।
[4] 'ज्वलन' अभिधान सिद्धि हे देव, उसका मुझे बताया भेव ।
दीप्तिमान योगी हो जाये, प्रयोग यदि इस का कर पाये ।

दो०–गुण यही इस सिद्धि का, आप बताया नाथ ।
तेज बढ़त है योग से, साधक होत सनाथ ।। 4280

[5] अगली सिद्धि आप बतलाई, 'दिव्य श्रोत' वह थी कथ पायी ।
इस का गुण तो नाथ बतायें, दिव्य ध्वनि साधक सुन पायें ।
चमत्कारी इक सिद्धि नाथ, आप बता कर कीन सनाथ ।
[6] है 'आकाश गमन' अभिधान, सिद्धि न जिस के और समान ।
सिद्ध योगी उड़ कर ही जाय, इसका वह प्रयोग कर पाय ।
जितनी सिद्धियां थी बताईं, क्या मैंने वे शुद्ध सुनाईं ।

---

[1] योग दर्शन III.35, [2] योग दर्शन III.38, [3] योग दर्शन III.39, [4] योग दर्शन III.40,
[5] योग दर्शन III.41, [6] योग दर्शन III.42

भई त्रुटि हो जहां भगवान, करें क्षमा यह शिष्य अनजान" ।
सुन नाथ निज शिष्य की वाणी, कहन लगे "हे साध ज्ञानी ।

दो०-कथ पाये जो साध तुम, सब सिद्धिन के नाम ।
तुम से भये प्रसन्न हम, हो चली अब शाम ।। 4281क
कल प्रात तुम आय कर, प्रसंग और सुन पाओ ।
संध्या वंदन हेत अब, निज धाम को जाओ" ।। 4281ख

दिन उनतीसवां (प्रातः)

प्रातः काल साध जब आया, स्वामी जी ने पास बिठाया ।
और कहा "हे साध सुजान, नई सिद्धि का दूं अब ज्ञान ।
[1]'महा विदेह' जिस का अभिधान, उस का सुनना ला कर ध्यान ।
योगी निकल देह से जाय, विदेह अवस्था में रह पाय ।
शुद्ध रूप उस का वहीं होय, प्रकृति के बंधन में न सोय ।
माया का हो पर्दा फाश, निरावरण हो वहां प्रकाश ।
ऐसी अवस्था को जो पाय, परम सिद्ध योगी कहलाय ।
सिद्धि और का दूं मैं ज्ञान, 'भूतजय' जिसका है अभिधान।

दो०-प्रकृति पर अधिकार जिमि, ईश्वर का है मीत ।
प्राप्त करत उस शक्ति को, इस संयम की रीत" ।। 4282

कहा साध "हे नाथ बतायें, क्या रीत इस हेत अपनायें ।
प्रकृति तो ईश्वर के अधीन, प्रकृति के वश जीव है दीन ।
असंभव संभव किमि हो पाय, प्रकृति जीव के वश जो आय" ।

---

[1] बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः (योग दर्शन III.43)
अर्थ – शरीर से बाहर कल्पना न की हुई वृत्ति महाविदेहा है । उससे प्रकाश के आवरण का नाश होता है ।

कहा नाथ "मैं यही बताऊं, दिव्य योग की रीत सुनाऊं ।
प्रकृति पांच तत्वों की मीत, हर इक तत्व का गुण लो चीत ।
प्रति तत्व के पांच आकार, 'स्थूल' और 'स्वरूप' प्रकार ।
'सूक्ष्म' वा 'अन्वय' दो ये जान, पांचवां 'अर्थवत्व' पहचान ।
[1] इन पांचों पै संयम होय, 'भूतजय' सिद्धि योगी गोय ।

दो०–'भूतजय' सिद्धि पाय कर, तत्व विजेता होय ।
प्रकृति पर अधिकार कर, आत्म स्थिति जन गोय"।। 4283

सद्गुरु का सुन कर उपदेश, कहा साध "हे मम हृदयेश ।
तत्व विजेता जब जन होय, खास सिद्धि क्या जन वह गोय" ।
कहा नाथ "तू प्रश्न जो कीन, इससे मिलेगा ज्ञान नवीन ।
तत्व विजेता योगी जोय, अणिमा आदि सभी सिद्धि गोय" ।
कहा साध "हे सद्गुरु देव, जाना प्रथम मैं तत्व भेव ।
तत्वों के 'आकार' बताये, सभी समझ में जो हैं आये ।
'आकारों' पर संयम कर पाय, 'तत्व विजेता' वही कहलाय ।
'तत्व विजेता' हो कर साध, 'अणिमादि' वह लेत आराध ।
अब मैं चाहूं हे भगवान, प्रथम 'आकारों का दो ज्ञान ।
अणिमादि का ज्ञान हे नाथ, फिर बतलायें इस के साथ" ।

---

[1] स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद् भूतजयः (योग दर्शन III.44)
अर्थ –पांचों भूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से भूतों का जय होता है ।

1. स्थूल – पांचों भूतों का अपना 2 विशिष्ट आकार ।
2. स्वरूप–पांचों भूतों का अपना 2 नियत धर्म जिस से वे जाने जाते हैं ।
3. सूक्ष्म – सूक्ष्म भूतों के कारण पांच तन्मात्रायें ।
4. अन्वय– तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम) जो अपने प्रकाश, क्रिया और स्थिति धर्म से पांचों भूतों में अन्व्यीभाव से रहते हैं ।
5. अर्थवत्व –पुरुष का प्रयोजन, भोग और अपवर्ग, जिसके लिए पांचों भूत कार्य में लगे हुए हैं ।

कहा नाथ "मैं अब समझाऊँ, जो तुम पूछा सब कथ पाऊँ ।

दो०-तत्वों के आकार जो, व अणिमा आदि आठ ।
श्रवण करो तुम साध जी, है रोचक यह पाठ ।। 4284

'स्थूल' आकार को हम देखें, इस को सब स्पष्ट ही पेखें ।
तत्व का जो 'स्वरूप' आकार, उस का तो है गुण आधार ।
प्रतितत्व का है गुण विशेष, वही उसका 'स्वरूप' विशेष ।
तत्वों के जो 'सूक्ष्म' आकार, तन्मात्रा के पांच प्रकार ।
'अन्वय' को तुम ऐसे जान, तीनों गुण तत्वों के मान ।
पुरुष हेतु सभी तत्व होंय, 'अर्थवत्व' में हि सब संजोंय ।
पांच तत्व के यही आकार, 'संयम' के हैं सभी आधार ।
इन पर संयम जो कर पाये, तत्व विजेता वह हो जाये ।

दो०-[1] तत्व विजेता होत है, पुरुष 'संयमी' जोय ।
तत्व विजेता को मिलत, अणिमादि गुण सोय ।। 4285

अब मैं तुम को वह बतलाऊं, अणिमा आदि सिद्धि कथ पाऊं ।
आठ सिद्धि का पाता लाभ, सिद्ध योगी जो हो अमिताभ ।
[2] आठ सिद्धियां अणिमादि जान, जिन का योग में है अधिमान ।
उन के नाम कथूं मैं मीत, स्मरण करो उन को सप्रीत ।
सिद्धि आठ जो योगी पावे, 'अणिमा' 'महिमा' कथन में आवे ।
'गरिमा' 'लघिमा' लो तुम जान, 'प्राप्ति' और 'प्राकम्य' महान ।
'ईशिता' 'वशिता' अन्तिम भाई, अष्टम सिद्धि कथन में आई ।

[1] ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च (योग दर्शन III.45)
अर्थ –उस भूत जय से अणिमा आदि आठ सिद्धियों का प्रादुर्भाव और कायसम्पत् होती है। और उन पांचों भूतों के धर्मों से रुकावट नहीं होती ।

[2] आठ सिद्धियां – 1. अणिमा, 2. महिमा, 3. गरिमा, 4. लघिमा, 5. प्राप्ति, 6. प्रकाम्या, 7. ईशिता, 8. वशिता

इन के लक्षण अब कह पावें, शास्त्र जिन के गुण बहु गावें ।

दो०–इन के लक्षण मैं कथूं, ला सुनो तुम ध्यान ।
शास्त्रों में प्रसिद्ध सब, तुम भी लेवो जान ।। 4286

अब तुम सायं को चलि आना, लक्षण इन के तब सुन पाना" ।

दिन उनतीसवां (सायं)

सायं काल जब साधु आया, नाथ ने उस को तब बताया ।
सिद्धिन के लक्षण बतलाऊँ, जिमि शास्त्रों में वर्णित पाऊँ ।
परमाणुवत जो तन हो पावे, 'अणिमा' सिद्धि कथन में आवे ।
देह को करे विशाल महान, 'महिमा' सिद्धि लो वह जान ।
इच्छा होय करे तन भारी, सिद्धि' यही है 'गरिमा' सारी ।
कर सके जो हलका देह को, 'लघिमा' सिद्धि कहते उसी को ।
'प्राप्ति' सिद्धि है परम महान, और जानो क्या इस समान ।
इच्छा लावे योगी मन में, पूर्ण होवे उसी ही क्षण में ।

दो०–पूर्ण इच्छा होय जब, कहावे पूर्ण काम ।
'प्राप्ति' सिद्धि योगी गहे, कृपा करें जो राम ।। 4287

अगली सिद्धि अब बतलावें, योग की महती महिमा गावें ।
दृश्य अदृश्य योगी हो जावे, 'प्रकाम्या' सिद्धि वही कहावे ।
ईश्वर जैसी शक्ति आवे, जग की रचना भी कर पावे ।
वही कहावे 'ईशिता' सिद्धि, इस से बड़ी क्या होवे ऋद्धि ।
सकल सृष्टि जब वश में आवे, पाप पुण्य योगी तर जावे ।
तीन लोक में विचरे ऐसे, निज का ही घर उस का जैसे ।
वही कहाती 'वशिता' सिद्धि, लोक लोकान्तर योग प्रसिद्धि ।
आठों सिद्धियां ये बतलाईं, उत्तम योगी जन ने पाईं ।

दो०-आठों सिद्धि साध कर, योगी पूर्ण कहाय ।
ऐसा नर विरला मिले, बाद युगों प्रकटाय" ।। 4288

सिद्धिंन का जब हुआ बखान, सुन साध आश्चर्य को मान ।
कहन लगा वह "हे मम नाथ, सुन कर मैं हूं भया सनाथ ।
योग से बड़ी न शक्ति होय, निश्चित मत मैं जानूं सोय ।
भूतजयी हो पुरुष महान, उस से बड़ा न को इन्सान ।
उसका करें कुछ और बखान, सुनना चाहूं मैं भगवान" ।
कहा नाथ "हे प्रिय मम मीत, तेरी देख योग में प्रीत ।
मेरे चित्त हर्ष है भारी, सुनो बात इक और न्यारी ।
[1] 'भूतजयी' जो होता मीत, 'काय संपत' भी ले वह जीत ।

दो०-'कायसंपत' की प्राप्ति, योगी करता सोय ।
'पंचभूत' को जीत कर, 'भूतजयी' जो होय" ।। 4289

कहा साध "हे नाथ बतायें, काय संपत् किसे कह पायें" ।
उसकी सुनकर नाथ जिज्ञास, आई उन के मुख पै हास ।
और कहा "हे साध सुजान, इस का भी मैं दूं तुझे ज्ञान ।
इस संपत के चार प्रकार, उत्तम 'रूप' लेवे तन धार ।
दूजा गुण 'लावण्य' आ जाय, तीजा गुण जन बहु 'बल' पाय ।
चौथा गुण जब जन में आय, वज्र समान वह दृढ़ हो जाय।
चारों गुण ये पावे सोय, 'भूतजयी''योगी जो होय ।
चारों गुण ये दुर्लभ जान, जो पावे वह पुरुष महान ।

---

[1] रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् (योग दर्शन III.46)
अर्थ –रूप, लावण्य, बल, बज्र की सी बनावट – कायसंपत (शरीर की संपदा) कहलाती है ।
रूप = beauty, लावण्य = grace, बल = strength, वज्र संहननत्व = adamantine hardness, कायसंपत = perfection or excellence of the body.

दो०–चारों गुण जिस में मिलें, वह हो पुरुष विशेष ।
होय अवतारी आत्मा, दोष न जिस में लेश" ।। 4290

साध कहा "हे नाथ दयाल, मेरा आप से और सवाल ।
भूतजयी जब जन हो जाये, सिद्धियां आदि बहु कुछ पाये ।
ज़ानन चाहूं अब मन नाथ, वश इन्द्रिन भी क्या होंय साथ ।
इन्द्रियां अति प्रबल लो जान, उन का नहीं है कीन बरवान ।
उनको कैसे वश कर पायें, कर कृपा मुझे यह बतलायें" ।
स्वामी बोले,"साध सुजान, इस का भी मैं दे रहा ज्ञान ।
इन्द्रियां प्रबल अति हैं भाई, योगी को भी वे दुख दाई ।
[1] उन को वश करने के हेत, 'संयम' कथन करूं अभिप्रेत ।
संयम से ही सब कुछ होय, बिना संयम जन न कुछ गोय ।

दो०–'संयम' शक्ति प्रबल है, योगी की हे साध ।
इन्द्रिन वश में करत वह, संयम को आराध ।। 4291

हे साध तुम प्रातः आना, स्पष्ट बात यह तब सुन पाना" ।
इतना बोल नाथ उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

---

[1] ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयमादिन्द्रियजयः (योग दर्शन III.47)
अर्थ – (इन्द्रियों के पांचों रूप) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से इन्द्रिय जय होता है ।

ग्रहण = इन्द्रियों की विषयाभिमुख प्रवृत्ति – the act, perception
स्वरूप = सामान्य रूप से इन्द्रियों का प्रकाशकत्व – appearance
अस्मिता = इन्द्रियों का कारण अहंकार – egoism
अन्वय = तीनों गुण जो प्रकाश, क्रिया, और स्थिति धर्म से इन्द्रियों में अन्वयीभाव से अनुगत हैं – Conjunction
अर्थवत्व = इन का प्रयोजन पुरुष का भोग और अपवर्ग – purpose fulness of sensation

दिन तीसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साध चलि आया, आ कर उस ने शीश झुकाया ।
और कहा "हे सद्गुरूदेव, इन्द्रिसंयम का कथिये भेव" ।
कहा नाथ "समझो मम मीत, रूप इन्द्रि के पांच लो चीत ।
रूप प्रति का नाम लो जान, 'ग्रहण' प्रथम जन करें बखान ।
दूजा 'स्वरूप' कथन में आय, तीजा 'अस्मिता' रूप कहाय ।
'अन्वय' चौथे का है नाम, पंचम 'अर्थवत्व' अभिराम ।

दो०- इन्द्रिन के इन रूप पर, हो संयम जब साध ।
'इन्द्रिजय' योगी बने, यह साधन निर्बाध" ।। 4292

बोला साध "हे नाथ महान, इन के अर्थ भी लूं मैं जान ।
'ग्रहण' आदि का कहिए भेव, श्रवण करूं श्री मुख से देव ।
इन्द्रिन के मैं रूप लूं जान, मुझे लगे यह नूतन ज्ञान" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊं, सरल रीति से सब समझाऊं ।
विषय से इन्द्री का संयोग, 'ग्रहण' शब्द का होत प्रयोग ।
इन्द्री का सामान्य जो रूप, वही जानों इस का 'स्वरूप' ।
इन्द्री का जो है अहंभाव, जानो 'अस्मिता' का वह भाव ।
तीन गुणों का जो प्रकटाव, वही समझो 'अन्वय' से भाव ।

दो०-इन्द्रिन कारण भोग जो, अथवा मोक्ष द्वार ।
उसे 'अर्थवत्व' जानो, कथन किया मैं सार ।।4293क
'संयमी' जन ही जाने, यह सूक्ष्म जो ज्ञान ।
आगे का प्रसंग अब, ला सुनो तुम ध्यान" ।।4293ख

बोला साध "यदि हो आदेश, पूछ लूं इक बात मैं लेश ।

इन्द्रिजय जभी जन कर पाये, कौन लाभ उस से पा जाये ।
यह ज्ञान मुझे दीजो नाथ, कृपा पाय तव बनूं सनाथ'' ।
[1] कहा नाथ ''जिज्ञास तव ठीक, लाभ पाये जन चल इस लीक ।
वे लाभ मैं तुझे बताऊं, श्रवण करो जो अब कथ पाऊं ।
प्रथम लाभ तुम यह लो जान, विकसे 'मानसिक शक्ति' महान ।
दूसर लाभ इस से हो जाय, बिन इन्द्रिन ज्ञान जन पाय ।
तीसर लाभ विशेष यह पाय, 'प्रकृति अधीन' जन के हो जाय ।

दो०– इस विध लाभ अनेक हैं, इन्द्रिय जय से साध ।
'संयमी' जन हि सकत है, इन्द्रिन को आराध'' ।। 4294

पूछा साध ''हे सद्गुरूदेव, आप से पाया मन का भेव ।
मानसिक शक्ति जब बढ़ पाय, उससे जन क्या लाभ उठाय'' ।
कहा नाथ ''जो प्रश्न है कीन, इससे योग का रहस लो चीन ।
मानसिक शक्ति जब बढ़ पाय, 'चित्त' व पुरुष' का भेद लखाय ।
ज्ञान की यह इक सीमा साध, लेता इस को जो आराध ।
[2] वह सर्वज्ञ पुरुष हो जाये, स्वामी सृष्टि का कहलाये'' ।
चौंका साध श्रवण कर बात, बोल उठा गुरु के साक्षात ।

---

[1] ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च (योग दर्शन III.48)
अर्थ –इन्द्रिय जय से मनोजवित्व, विकरण भाव, और प्रधानजय होता है ।

मनोजवित्व = मानसिक तीव्रता – quickness of the mind.
विकरणभावः = इन्द्रियों की सहायता के बिना ज्ञान लाभ – (sensing without organs)
प्रधानजयः = प्रकृति पर विजय – power of control over the modifications of prakriti.

[2] सत्वपुरुषान्यतारव्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।। (योग दर्शन III.49)
अर्थ –चित्त और पुरुष का भेद जानने वाले को सारे भावों (सृष्टियों) का मालिक होना और सर्वज्ञ होना प्राप्त होता है ।

"कथी जो शक्ति हे भगवान, उपजे इससे तो अभिमान ।
अधिष्ठा सृष्टि का बन पाये, वा सर्वज्ञ जभी हो जाये ।
उपजे उसके मन अभिमान, किस विध हो तब उस का त्राण ।

दो०-भ्रष्ट योग से होय कर, पाय न पद निर्वाण ।
कौन उपाय नाथ मम, मिले जीव को त्राण" ।। 4295

सुन कर नाथ दीन मुस्काय, और कहा "तुझे कहूँ उपाय ।
उस उपाय को जो अपनाय, भ्रष्ट न योग से वह हो पाय ।
उस उपाय की कर अवहेल, बहुतन खेली जीवन खेल ।
अनेंकों का ऐसा इतिहास, योग भ्रष्ट भये जन वे खास ।
मार्ग कठिन पर है गुणकारी, इसमें निहित है सिद्धि सारी ।
हो कैवल्य जो विध अपनाय, यह भूल जन भ्रष्ट हो जाय" ।
साध तभी उत्सुक हो पाया, वह बोला "प्रभु कहो उपाया ।
मेरे चित्त है अति जिज्ञास, करूं श्रवण उपाय वह खास ।

दो०-उपाय वह बतलाय कर, करिये मुझे सनाथ ।
दोषों से मैं बच रहूँ, सदा चलूं सत पाथ" ।। 4296

कहा नाथ "जब सायं आओ, निज जिज्ञासा तब कथ पाओ ।
उत्तर मिलेगा तुमको तात, शास्त्रन वर्णित जो है बात" ।

दिन तीसवां (सायं)

शाम को जब साध आ पाया, सद्गरु चरणों में कथ पाया ।
"कथन करो वह नाथ उपाय, कैवल्य जिमि जनको मिल पाय" ।
कहा नाथ यह मैं बतलाऊं, सूक्ष्म बात तुम्हें समझाऊं ।
सिद्धयोगी भी हो जो भाई, रहता दोष बीज मन राई ।

[1] बीज दोष का बिन क्षय होय, कैवल्य लाभ न पाता कोय" ।
पूछा साध "हे नाथ महान, उस का क्षय किमि हो भगवान ।

दो०-दोष बीज का नाश किमि, हो सकत भगवान ।
यह समझे अब आप से, जन मूर्ख अनजान" ॥ 4297

स्पष्ट बात तब नाथ कथ पाय, "दोष बीज हो क्षय तब पाय ।
अहंकार का होय जब नाश, मुमुक्षु को जो करत हताश ।
वैराग्य हि अहंकार नशाय, शास्त्र इसको स्पष्ट बतलाय ।
जिस के चित्त होय अहंकार, कैवल्य पाय न किसी प्रकार ।
पर वैराग्य जो जन अपनाय, जन वही कैवल्य को पाय"।
कहा साध "हे नाथ महान, कैवल्य का तुम दीना ज्ञान ।
वैराग्य का भी कीन बखान, बीज 'अहं' को लीना जान ।
आप से पुनः निवेदन नाथ, बतला मुझे यह करें सनाथ ।
सिद्धियों का जब हो प्रभाव, योगी का भी उखड़े भाव ।
उस समय वह क्या कर पाये, चित्त विरक्त न डिगने पाये ।

दो०-स्थिरता होवे चित्त में, स्थिर रहे वैराग ।
सिद्धियां बाधक न बनें, उपजे न मन राग" ॥ 4298

कहा नाथ "तू ठीक बताया, क्षण क्षण हि में व्यापे माया ।
बाह्य शक्तियां करती प्रहार, चित्त लुभाती कई प्रकार ।
उस समय जन क्या कर पाय, वह ही सुन लो आप उपाय ।
रहे अनिष्टों से जन दूर, और न करे जन कभी गरूर ।

---

[1] तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् (योग दर्शन III.50)
अर्थ -सर्वज्ञ आदि सिद्धियों से भी वैरोग्य होने पर दोषों के बीज का क्षय होने पर ही कैवल्य होता है ।

[1] अन्यथा अनिष्ट करें प्रहार, करें भ्रष्ट योगी को डार" ।
कहा साध "हे गुरु भगवान, आप से पा कर ऐसा ज्ञान ।
धन्य भाग्य मैं अपना जानूं, शब्द नहीं आभार बखानूं ।
एक बात मम मन में आये, बुद्धि को किमि चित्त समझाये ।
बुद्धि जब तक बात न ग्राहे, चित्त भी तब तक वश न आये ।
ऐसा को उपाय बतलायें, बुद्धि को समझा हम पायें ।

दो०–बुद्धि मध्य विवेक जिमि, उपजे हे मम नाथ ।
ऐसी युक्ति होय यदि, कथ कर करें सनाथ" ।। 4299

कहा नाथ "हे साध सुजान, विवेक बुद्धि का गुण लो मान ।
विवेकज ज्ञान जिमि हो पाय, वही कथूं मैं तुम्हें उपाय ।
प्रथम बात तुम लो यह जान, जग में काल का है अधिमान ।
काल का भय सबन को होय, इससे बचा न जग में कोय ।
काल की हस्ती क्या है मीत, वह भूत भविष्यत की प्रतीत ।
यह सब भ्रांति का है जाल, प्रकृति की रचना ही है काल ।
दिन रात और वर्ष व मास, इन की सत्ता नहीं कुछ खास ।
उपज ये सूर्य की हैं भाई, बिना सूर्य न कोई सचाई ।
अकाल पुरुष को जो ले जान, बंधन से वह मुक्त लो मान ।
[2] इस विवेक को जो अपनाये, ज्ञान विवेकज वह पा जाये ।

दो०–भेद काल के जो लिखे, क्षण आदि हे मीत ।
उन पर संयम जो करे, ज्ञान की हो प्रतीत" ।। 4300

---

[1] स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् । (योग दर्शन III.51)
अर्थ –अपनी शक्तियों के आकर्षित करने पर भी योगी को उन का संग और उन पर घमण्ड नहीं करना चाहिए । इस में फिर अनिष्ट के प्रसंग का भय है ।

[2] क्षण तत्क्रमयो: संयमाद्विवेकजं ज्ञान्दम् (योग दर्शन III.52)
अर्थ –क्षण और इस के क्रमों में संयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है ।

बोला साध "मैं लीना जान, मिला अभूतपूर्व यह ज्ञान ।
ऐसी बात न किसी बताई, श्री मुख से जो है सुन पाई ।
हम काल को ही सत्य जानें, अकाल पुरुष को न पहचानें ।
करूं अकाल पुरुष का ध्यान, जिस पै काल का न अधिमान ।
काल से मम मन भय न खाये, अकाल पुरुष हि चित्त समाये ।
काल की गणना से मन छूट, पुरुष में श्रद्धा करे अटूट ।
पुरुष पुरुषोत्तम हैं इक रुप, चित्त बसे वही रूप अनूप ।
शाश्वत उस का रूप पहचान, काल से मुक्त लूं निज को जान ।

दो०–यह विवेकज ज्ञान है, इस में रख विश्वास ।
सदा सन्मार्ग पर चलूं, रहूं सदा तव दास ।। 430क
इस दास को नाथ मम, रह पाय यही ध्यान ।
अकाल पुरुष का अंश मैं, दिया आपने ज्ञान"।। 430ख

बोले नाथ "ठीक तू जाना, ज्ञान विवेकज को पहचाना ।
इक बात तुझे और बताऊँ, प्रातः आना तब समझाऊँ" ।

दिन इकत्तीसवां (प्रातः)

प्रात समय साध जब आया, उसे नाथ ने पास बिठाया ।
आगे का प्रसंग कथ पाया, और साध को उन समझाया ।
प्रकृति के जो अनेक हैं रूप, एक सभी में रूप है गूप ।
[1] अनेक रूप जब जन लख पाय, उसके मन विक्षेप तब आय ।
जन को जब विवेक हो पाय, अनेकता में हि एक लखाय ।
उस एक को 'पुरुष' पहचान, जो सर्वत्र व्यापक मान" ।

[1] जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः (योग दर्शन III.53)
अर्थ –एक दूसरे से जाति, लक्षण, देश से भेद का निश्चय न होने से दो तुल्य वस्तुओं का विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है ।

कहा साध "हे नाथ प्यारे, भ्रम मम दूर भये हैं सारे ।
जानूं विवेकज ज्ञान महान, नाथ यह फिर से करें बखान" ।
कहा नाथ "हे साध प्यारे, प्रश्न तिहारे लगते प्यारे ।

दो०- जो पूछा मैं फिर कहूं, ज्ञान विवेकज मीत ।
एक इलाही चेतना, ऐसी करो प्रतीत ।। 4302

वह ज्ञान जब चित्त समाय, चित्त ज्ञानरूप हो जाय ।
[1] बिन प्रमाण सूझ सब पाय, वही विवेकज ज्ञान कहाय ।
अवस्था तब तुम ऐसी जान, जिस का करना कठिन बखान ।
चित्त के बंधन जाते टूट, कारा से जिमि गया हो छूट ।
होय स्वतन्त्र करता वास, अपने मालिक के वह पास ।
ऐसा शुद्ध तब उस का रूप, आत्मा का है जोय स्वरूप ।
आवागमन का कारण चित्त, वैसा रहा न वह निमित्त ।
[2] मोक्ष ही तब उसका परिणाम, ऐसा ज्ञान दीना प्रभु राम ।

---

[1] तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् (योग दर्शन III.54)
अर्थ –बिना निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला, सब को विषय करने वाला, सब प्रकार से (विषयिक) कार्य करने वाला और बिना क्रम से ही किसी ज्ञान को प्राप्त करने वाला विवेकज ज्ञान कहलाता है ।

तारक = The intuitional. Born without any external aid. It takes the man across the bonds of the world.

सर्व विषयं = Having everything for its sphere of operation. It relates to all objects from the 'Pradhan' to the 'Bhutas', as also to the conditions of these objects.

सर्वथाविषयं = Having all conditions for its sphere of operation.

अक्रमम् = Having no succession.

[2] सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् (योग दर्शन III.55)
अर्थ –चित्त और पुरुष की समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है ।

दो०- जन्म जन्म में भटकता, जीव चित्त के साथ ।
विवेक ज्ञान की प्राप्ति, पा अब भया सनाथ ॥ 4303क
गांठ बांध लो बात यह, हे साधो प्रवीण ।
ज्ञान गुरु से ग्राहे जन, 'कैवल्य' गुरु अधीन" ॥ 4303ख

सुन ध्यान से नाथ उपदेश, बोला साध "हे मम हृदयेश ।
नाथ मिला बहु आप से ज्ञान, इच्छा है कुछ और लूं जान ।
समाधि से जन सिद्धी पाये, ये रहस्य सब आप बताये ।
सुना है यह भी हे भगवान, और कुछ इसके हैं परमाण ।
समाधि बिना सिद्धि मिल पाय, कौन हैं नाथ वे सब उपाय" ।
नाथ कहा "तव ठीक सवाल, सिद्ध पुरुष हैं भये सब काल ।
बहु विधियां हैं उन अपनाईं, शास्त्रन में जो कथन में आईं ।
कुछ एक का मैं करूं बखान, तव संशय का भये निदान ।

दो०- [1]पांच विधिन तुम जान लो, सिद्धिन हेतुन साध ।
कई जन्म से सिद्ध हों, कुछ लें तप आराध ॥ 4304क
औषधी का प्रयोग भी, करते हैं कुछ लोग ।
मन्त्र साधना भी करें, तप करते बहु लोग ॥ 4304ख
समाधि से तो सिद्धियां, होतीं लीं तुम जान ।
बाकी भिन्न उपाय हैं, सिद्धिन हेतु मान" ॥ 4304ग

सुन कर साध पुनः कह पाया, "नाथ सुने मैं पांच उपाया ।
पांचों में है कौन विशेष, जिस से मिटते सकल क्लेश" ।
कहा नाथ "तू जो कह पाई, क्लेशों की है बात चलाई ।

[1] जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः । (योग दर्शन IV.1)
अर्थ - जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि से सिद्धियां मिल पाती हैं ।

क्लेश मिटें तब मोक्ष हो पाय, नहीं तो जन्म मरण जन पाय ।
इस हेतु है समाधि उपाय, अन्य उपाय न काम में आय ।
समाधि उपाय उत्तम जानूं, इस समान अन्य नहीं मानूं ।
समाधि से सभी मिटें क्लेश, दोष रहें न चित्त में लेश ।
क्लेश रहें तो जन्म हो पाय, इस का कारण शास्त्र बताय ।

दो०-[1] जन्म जन्म का कारण, प्रकृति जन की होय ।
प्रकृति में जो हो भरा, जन्म पाय जन सोय" ॥ 4305

कहा साध "हे नाथ महान, विस्तृत चाहूं जन्म का ज्ञान ।
जिस कारण जन जन्म को पाय, वह कारण न समझ में आय ।
वह समझूं मैं आप से आज, स्पष्ट करो सब हे महाराज" ।
नाथ बताया साध को तब, "सूक्ष्म बात तुझे कह दूं अब ।
जन्म के कारण जानो दोय, 'उपादान' उन में इक होय ।
'निमित्त' कारण दूज लो जान, दोनों कारण जन्म के मान ।
प्रकृति को तुम मुख्य लो जान, कारण उपादान वह मान ।
चित्त प्रकृति जिस विध हो जाय, जीव वैसे ही देह को पाय ।

दो०- प्रकृति जीव की हो जिमि, वैसा मिलता देह ।
मुख्य कारण यही भये, इसमें न संदेह ॥ 4306

हे साधो अब तुम चलि जाओ, सायं शीघ्र लौट के आओ ।
आगे की फिर बात चलायें, अब मध्याह्न कर्म कर पायें" ।

दिन इकत्तीसवां (सायं)

सायं भयी साध चलि आया, नाथ उसे तब पास बिठाया ।
साध के मन थी यह जिज्ञास, दूजा कारण क्या है खास ।

---

[1] जात्यन्तरपरिणाम: प्रकृत्यापूरात् (योग दर्शन IV.2)
अर्थ -एक जाति से दूसरी जाति में बदल जाना प्रकृति के भरने से होता है ।

कहन लगा "हे नाथ महान, पहली बात तो ली मैं जान ।
कारण 'निमित्त' हो क्या देव, इस का भी बतलाओ भेव" ।
कहा नाथ "मैं यह बतलाऊं, कारण 'निमित्त' अब कथ पाऊं ।
खेती को तुम देखो जोय, बीज ही उस का कारण होय ।
जैसा बीज खेती वह होय, इसमें न संदेह है कोय ।
'उपादान' तू बीज को जान, जल आदि सब 'निमित्त' लो मान ।
[1] कृषक करे जो खेत की सेव, इस से जान 'निमित्त' का भेव ।

दो० – 'निमित्त' तो न बदल सके, प्रकृति किसी प्रकार ।
चना गंधम न बन सके, यत्न करें हज़ार" ॥ 4307

सुन नाथ की स्पष्ट यह बात, साध कहा "हे ज्ञान प्रदात ।
निमित्त चित्त में फर्क न लाय, इस के लिए है कौन उपाय ।
चित्त की प्रकृति बदले कैसे, कौन उपाय कहे हैं ऐसे" ।
कहा नाथ "प्रश्न गुणकारी, इससे मिले रहस्य बहु भारी ।
समाधि से ही ऐसा होय, और उपाय न जानो कोय ।
[2] द्रष्टा को जब जन लख पाय, तभी चित्त बदलाव में आय ।
अन्य उपाय तू ऐसे जान, निमित्त मात्र ही उनको मान ।
जीव का करें न बहु कल्याण, बढ़ावें केवल वे अभिमान ।

दो० – अन्य उपाय कथन किये, उन से न कल्याण ।
आत्म दर्शन समाधि ही, करे चित्त निर्माण ॥ 4308क

---

[1] निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् (योग दर्शन IV.3)
अर्थ – निमित्त प्रकृतियों का प्रेरक नहीं होता, किन्तु उस से किसान के सदृश रुकावट दूर होती है ।

[2] निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् (योग दर्शन IV.4)
अर्थ – केवल आत्म दर्शन से ही चित्त में बदलाव आता है ।

अन्य उपाय भूल सब, करो योग से प्रीत ।
योग हि तारण हार है, रहे सदा तव चीत ।। 4308ख
एक लक्ष्य ही योग का, अन्य लक्ष्य न होय ।
बहुत लक्ष्य की साधना, से न जन कुछ गोय ।। 4308ग
[1] अनेक जभी प्रवृत्तियां, मन एक है भाई ।
खो सभी में जाय जब, प्राप्त करे न राई ।। 4308घ

इस विध जानो मेरे भाई, फंस वासना में मन जाई ।
[2] समाधि में जब चित्त लग जाय, वासना शून्य तभी हो पाय" ।
कहा साध"हे नाथ प्यारे, कर्म वासना से हों सारे ।
किस विध योगी कर्म कर पाय, वासना रहित जब हो जाय" ।
कहा नाथ "तुम सुनो मम तात, पूछी विधि की तुम है बात ।
योगी का मन विधि को जाने, अन्य पुरुष न उसे पहचाने ।
तीन विध सभी कर्म लो जान, 'शुक्ल' 'कृष्ण' और 'मिश्रित' मान ।
[3] सब जनों के कर्म हों ऐसे, योगी के पर होय अनैसे ।
कर्म करे न 'शुक्ल' वह भाई, होंय न वे 'अशुक्ल' भी राई ।

दो०- मानव तन को पाय कर, सभी करें जन काम ।
कर्म करें 'सकाम' सब, योगी तो 'निष्काम" ।। 4309

[1] प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् (योग दर्शन IV.5)
अर्थ -एक प्रयोजक चित्त प्रवृत्तियों के भिन्न 2 होने पर अनेकों के भीतर (खो जाता है)।

[2] तत्र ध्यानजमनाशयम् (योग दर्शन IV.6)
अर्थ -उन पांच प्रकार के जन्म, औषधि, आदि से उत्पन्न हुए निर्माण चित्तों में से समाधि से उत्पन्न होने वाला चित्त वासनाओं से रहित होता है ।

[3] कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् (योग दर्शन IV.7)
अर्थ -योगी का कर्म अशुल्क -अकृष्ण होता है । दूसरों का तीन प्रकार का (पाप, पुन्य और पाप पुन्य मित्रित) होता है ।

कहा साध "प्रश्न इक नाथ, इसे भी स्पष्ट करें इस साथ ।
सकाम कर्म जब जन कर पाय, उस के फल को वह क्या पाय" ।
कहा नाथ "जो कर्म सकाम, उसका दूर गामी परिणाम ।
[1] पुण्यापुण्य का फल जब पाय, वासना से जन घिर तब जाय" ।
पूछा साध "तब हे भगवान, वासना का क्या हो परिणाम" ।
बोले नाथ "वासन अनुसार, जीव लेवे जग में तन धार" ।
बोला साध "मम हे भगवान, जन्मे जीव कहां कब आन ।
इस का भी को नेम है नाथ, वह बतला कर करें सनाथ ।

दो० – मम जिज्ञासा नाथ जी, करिये यह भी शांत ।
आगे का जो ज्ञान हो, देना इस उपरान्त" ॥ 4310

कहा नाथ "तू प्रश्न जो कीन, उसका उत्तर लो अब चीन ।
ऐसे गूढ़ विषय जो भाई, गुरु किरपा से खुलें सदाई ।
राम लाल भगवान योगेश, इन की चर्चा करत हमेश ।
उन से मैं जो हूं सुन पाया, वही कथूं उन की पा दाया ।
तेरे चित्त जिज्ञासा जोय, शांत होय इस काल वह सोय ।
जो जन्मा सो मरता भाई, मृत्यु पाछे जन्म हो जाई ।
[2] जन्म कभी वा कहां भी होय, जन्मे किसी रूप में सोय ।
सब संस्कार प्रभाव दिखायें, स्मृति बन वे प्रकट हो पायें ।

दो० – संस्कार का प्रभाव तो, जन्म जन्म में जान ।
रहें जीव के संग वे, पर न जीव को ज्ञान" ॥ 4311

---

[1] ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् । (योग दर्शन IV.8)
अर्थ – उन तीन प्रकार के सकाम कर्मों से उन के फल के अनुकूल ही वासनाओं की अभिव्यक्ति (प्रादुर्भाव) होती है ।

[2] जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् । (योग दर्शन IV.9)
अर्थ – जाति, देश और काल कृत व्यवधान वाली वासनाओं का भी व्यवधान नहीं होता । क्योंकि स्मृति और संस्कार एक रूप (समान विषयक) होते हैं ।

पूछा साध ने "हे महाराज, यह भी समझूं आप से आज ।
जीव व संस्कार संबंध, कब से है यह सकल निबंध ।
इस का है क्या को अनुमान, यह भी लूं मैं आप से ज्ञान" ।
कहा नाथ "अब भया कुवेला, कल तुम आना प्रातः वेला" ।

दिन बत्तीसवां (प्रातः)

प्रातः काल जब साधु आया, उसे नाथ ने तब समझाया ।
नाथ कहा "हे साध पहचान, जीव को इस का लेश न ज्ञान ।
[1] लेवो तुम पर इतना जान, संग अनादि काल से मान" ।
संस्कार की सुन बात नवीन, साधु ने तब प्रश्न यह कीन ।
"हे नाथ सुन आप से पाये, संस्कार अनादि हैं बताये ।
उन का जीव से नात अटूट, किसी भी विध से सके न टूट ।
मुक्ति का प्रभो कौन विधान, कर कृपा मुझे दीजो ज्ञान ।

दो०–मुक्ति किस विध होत है, सुनूं आप से नाथ ।
जीवन के इस लक्ष्य को, कह कर करें सनाथ" ।। 43 12

बोले नाथ "बात यह ठीक, विरले चलते मोक्ष की लीक ।
मोक्ष जीव का लक्ष्य बताया, वही चला जिस पर गुरु दाया ।
राम लाल मम गुरु भगवान, उनसे मिल पाया यह ज्ञान ।
स्पष्ट बात उन इक कह दीन, शास्त्रों की सब व्याख्या चीन ।
अन्तिम लक्ष्य के नाम अनेक, अपनी रुचि से कहे प्रत्येक ।
'कैवल्य' नाम से को बताय, 'मुक्ति' अन्य कोई कह पाय ।
'मोक्ष' नाम यह कहीं धराय, को 'निर्वाण' इस को कथ पाय ।

[1] तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् (योग दर्शन IV.10)
अर्थ –उन वासनाओं का आशिष (अपने कल्याण की इच्छा) के नित्य होने से अनादित्व (अनादि होना) भी है ।

लक्ष्य एक पर नाम अनेक, रुचि अनुसार कहे हर एक ।
नाम में नहीं जन भरमाये, लक्ष्य की सिद्धि वह कर पाये ।

दो०–मुक्ति सिद्धि हेत यह, योग बताया राम ।
वासना के अभाव पर, ही बने यह काम" ॥ 4313

कहा साध "हे परम योगेश, वासना रहतीं संग हमेश ।
उन का अभाव किमि हो पाय, इसका करिये कथन उपाय" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, यह तो परम गूढ़ है ज्ञान ।
गुरु मुख से मैं जो सुन पाया, वही कथन मैं करूं उपाया ।
वासना का हो तभी विनाश, उसके बीज का हो जब नाश ।
जब तक बीज की सत्ता होय, प्राप्त अभाव को हो न सोय ।
[1] वासना का सहारा बीज, वासना उस बिन कुछ न चीज ।
वासना के सहारे भाई, कथनी चार नाम हैं आई ।

दो०–रहें सहारे जब तलक, वासना के हे मीत ।
त्यागे न संग वासना, होय तुझे प्रतीत ॥ 4314क
उनका होय अभाव जब, वासन हो निर्मूल ।
हो मुक्ति तभी मिटत है, जन्म मरण का शूल" ॥ 4314ख

सुन कर नाथ का यह उपदेश, बोला साध " हे मम हृदयेश ।
सहारे वासन के जो चार, उनके कथन करिये प्रकार ।
किस विध वासन वे उपजायें, और किमि उसे स्थिर रख पायें ।
यह समझ नहीं जब तक आय, मेरा चित्त नहीं शांति पाय ।

[1] हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः (योग दर्शन IV.11)
अर्थ –हेतु, फल, आश्रय और आलंबन से वासनाओं के संगृहीत (सहारे) होने से इन के (हेतु, फल, आश्रय और आलंबन के) अभाव में उन वासनाओं का अभाव होता है।
हेतु = cause , फल = motive, आश्रय = Substratum, आलंबन = object

कर किरपा करिये विस्तार, उतर जाये मम मन से भार" ।
कहा नाथ "तुम सुन लो मीत, चार सहारे ला कर चीत ।
नाम प्रथम का 'हेतु' आया, नाम दूजे का 'फल' बताया ।
तीजा 'आश्रय' लो तुम जान, चौथे को 'आलंबन' मान ।

दो०–'हेतु' 'फल' और 'आश्रय', वा 'आलंबन' मीत ।
वासन के आधार ये, सदा रहें तव चीत" ।। 4315

कहा साध "हे सद्गुरुदेव, सुना आप से मोक्ष का भेव ।
वासना जन्म मरण की मूल, कथन किया आप यही असूल ।
वासना के सहारे चार, 'हेतु' 'फल' 'आलंबन' आधार ।
'आश्रय' चौथा है महाराज, इतना ज्ञान मिला है आज ।
'हेतु' आदि क्या हैं मम नाथ, यह भी स्पष्ट करो इस साथ ।
आप सर्वज्ञ सर्वेश्वर देव, शास्त्रों के सभी जानो भेव ।
'हेतु' का क्या अर्थ है देव, 'फल' का भी बताओ भेव ।
'आश्रय' से क्या भाव भगवान, 'आलंबन' का भी मिले ज्ञान ।

दो०–मैं चाहूँ विस्तार से, जानन हे मम देव ।
'हेतु' आदि जो हैं कथे, उन का सारा भेव" ।। 4316

कहा नाथ "अब तुम चलि जाओ, सायं काल लौट कर आओ ।
फिर मिलेगा उचित ज्ञान, सुनना जो तुम ला कर ध्यान" ।

दिन बत्तीसवां (सायं)

सायं काल जब साधु आया, नाथ ने उस को पास बिठाया ।
कहां नाथ "तुझे बताऊं, 'हेतु' आदि का ज्ञान कराऊं ।
संस्कारों के ही 'हेतु' कहायें, पुण्य पाप जो हम कर पायें ।
पुण्य पाप से सुख दुख पायें, वे ही उन के फल कहलायें ।

मन संस्कारों का 'आश्रय' मीत, स्पष्ट बात यह लो तुम चीत ।
[1] जिस वस्तु पै चित्त टिक पाये, वह ही तो आलंब कहाये ।
संस्कार अनादि हैं कथ पाय, और वे नित्य भी हैं बताय ।
इस का रहस्य कथूँ अब मीत, ध्यान से सुनना तुम ला चीत ।
चक्र संस्कारों का यह जान, जिस पै घूमे सकल जहान ।
छः अरों का यह चक्र साध, चक्र लगावे बिन वह बाध ।

दो०– [2] छः अरों का चक्र यह, चाले बिन ही बाध ।
काल अनादि से चला, रुके कभी न साध" ॥ 4317

पूछा साध "मम मन जिज्ञास, अरे छः जो कथे हैं खास ।
उन अरों का कैसा रूप, रहे संस्कारों में जो गूप" ।
कहा नाथ "तुझे समझाऊँ, जगत चक्र का बोध कराऊँ ।
पुण्य पाप जब करत इन्सान, परिणाम में सुख दुख लो जान ।
सुख से राग उपजे मम मीत, उपजत दुख से द्वेष लो चीत ।
कर्म करे जन उस पश्चात, शुभ अशुभ जो होता तात ।
शुभ अशुभ से पुण्य और पाप, फिर चलता वही चक्र आप ।
अनादि काल से चल रहा मीत, सदैव चलेगा हो प्रतीत ।
अनादि नित्य यह चक्र जान, इसका रुकना असंभव मान ।
रुके चक्र बस एक उपाय, 'हेतु' आदि जब नष्ट हो जाय ।

---

[1] हेतु = पुण्य, पाप आदि कर्म
फल = पुण्य, पाप से होने वाला सुख, दुख
आश्रय = मन, चित्त
आलंबन = चित्त का विषय

[2] "By virture comes pleasure, by vice pain. From pleasure comes attachment, from pain aversion. Thence comes effort. Thereby, acting by mind, body & speech, one either favours or injures others. There come again virtue and vice, pleasure & pain, attachment and aversion. Thus it is that revolves the six spoked (vice-virtue, pain-pleasure, aversion-attachment) wheel of the world."

'हेतु' आदि का होय अभाव, नाश संस्कारों का हो भाव ।

दो०-'हेतु' आदि के नाश से, सकल मिटें संस्कार ।
यह अवस्था भये तभी, गुरु मिलें करतार'' ।। 43 18

कहा साध ''हे नाथ महान, संस्कारों का यह गुप्त ज्ञान ।
सुना ध्यान से मैंने नाथ, गति है जन की आप के हाथ ।
कर्म से संस्कार उपजाय, संस्कार से ही कर्म हो पाय ।
ऐसा चक्र अनादि भगवान, इस का मिले न सहज ज्ञान ।
इस चक्र से किमि मुक्ति होय, किरपा कर बतलावें सोय'' ।
कहा स्वामी ''हे साध सुजान, कर्म का दूं मैं तुझको ज्ञान ।
कर्म तीन प्रकार का जान, काल भेद से उसे पहचान ।
एक कर्म लो वह तुम जान, पूर्व जन्मों में विहित मान ।

दो०-उसका ही परिणाम है, इस जन्म का भोग ।
कहें उसे प्रारब्ध वे, ज्ञानवान जो लोग ।। 43 19क
उन कर्मों को जान लो, फल पके की नाईं ।
तोड़ जिसे जन भोगते, जग में सब हि थाईं ।। 43 19ख
यह किस्मत या भाग्य है, समक्ष समन हि मीत ।
योगी उस को भोगते, दुख न ला कर चीत ।। 43 19ग

अन्य कर्म तुम सञ्चित जानो, उन का फल न होय अब मानो ।
भावी जन्मों में फल होय, काचे फल के सम हैं सोय ।
तीजा कर्म तुम लो वह जान, जिसका है क्रियमान अभिधान ।
उसका फल भविष्य में होय, इसी जन्म या अन्य में सोय ।
योगी के समक्ष सदा यह बात, किस विध बचे वह फल से तात ।
यह ही बात मैं करूं स्पष्ट, तेरी भ्रांति होय जिमि नष्ट ।

क्रियमान कर्म हो जो भाई, उस का फल तो तब मिट पाई ।
फल की इच्छा त्याग के मीत, कर्तव्य कर्म करे सप्रीत ।

दो०–फल की इच्छा त्याग कर, करता योगी काम ।
धर्म उसे निज जान कर, रह सदा निष्काम ।। 4320

प्रारब्ध की अब सुन लो बात, कीने कर्मों का फल तात ।
मन में समझ कर सारी बात, भोगें खेद बिना ही तात ।
कीने कर्म का फल जो होय, सहर्ष भोगे खुद योगी सोय ।
वह जन 'वीर–योगी' कहलाय, ऐसा राम प्रभु कथ पाय ।
अब सुन सञ्चित कर्म की बात, भविष्य में जिससे हो साक्षात ।
उन कर्मों का अखुट भण्डार, परिणाम जिन के जन्म अपार ।
किस विध वे हों क्षय भगवान, यह ही सोचत योगी पुमान ।
सद्गुरु से उस युक्ती पायी, निर्माण चित्त विधि कहलायी ।

दो०–चित्त बहु निर्माण कर, भोगत सब संस्कार ।
इसी जन्म में ढोत वह, बहु जन्मों का भार" ।। 4321

सुनी साधु ने सारी बात, कहन लगा वह "हे जगत्रात ।
निर्माण चित्त का दीजो ज्ञान, समझूं आप से मैं भगवान" ।
कहा नाथ "हे साध सुजान, आ तुम प्रातः पाना ज्ञान" ।
यह कह नाथ तभी उठ पाये, अपने कक्ष में वे सिधाये ।

दिन तैंतीसवां (प्रातः)

भयी प्रातः साधु चलि आया, चरणी गुरु के आसन लाया ।
नतमस्तक हो कीन प्रणाम, और कहा "हे सुख के धाम ।
निर्माण चित्त कथा भगवान, अब उस का मुझे दीजो ज्ञान ।
चित्त तो सब के भीतर होय, निर्मित किस विध फिर हो सोय ।

दो०-इस क्रिया का ज्ञान सब, दे कर करें सनाथ ।
ज्ञान आप से ही मिले, मम विनय यह नाथ" ।। 4322

कहा नाथ "हे साध प्यारे, रहस योग के होते न्यारे ।
उन रहस्यों को समझन हेत, बुद्धि सात्विकी है अभिप्रेत ।
दत्त चित्त हो तुम सुन पाओ, लेश न संशय मन में लाओ ।
योगी जभी ध्यान में देखे, पूर्व के सब कर्म उल्लेखे ।
उस के चित्त में यह समाये, जन्म मरण में पुनः न आये ।
निज सिद्धि का तब करे प्रयोग, आवे काम उस के ही योग ।
बहु चित्तों का करे निर्माण, क्षय करे सभी कर्म लो जान ।
एक जन्म में क्षय सब होयं, सञ्चित कर्म जो उस के होंय ।

दो०-इस विध 'सञ्चित कर्म' का, सञ्चित जो भण्डार ।
क्षय करता इक जन्म में, लक्ष्य मोक्ष का धार" ।। 4323

सुन कर नाथ का तर्क विशेष, बोला साध "हे मम हृदयेश ।
नई बात जो आप बताई, यह तो कभी भी न सुन पाई ।
एक चित्त अनेक हो जाये, हर इक भिन्न कर्म कर पाये ।
उनका एक दूजे के साथ, क्या संबंध हो मेरे नाथ ।
क्या स्वतन्त्र हों वे भगवान, परतन्त्र अथवा लूं यह जान" ।
सुन कर नाथ उस की जिज्ञास, बोले ला वे मुख पै हास ।
'स्वतन्त्रता की बात न सोच, परतन्त्र उनको ही तुम लोच ।
मूल चित्त के सभी अधीन, स्फुलिंग जिमि हो अग्नि के चीन ।
सभी का निश्चित होवे काम, बाद में उन का काम तमाम ।

दो०-क्षीण जभी संस्कार हों, होय चित्त का अन्त ।
एक जन्म में इस तरह, भोगे कर्म अनन्त" ।। 4324

कहा साध "हे नाथ महान, आपको तो है पूर्ण ज्ञान ।
मम जिज्ञासा करिये शांत, जैसे मिटे मम सकल भ्रांत ।
कर्म फलों को भोगन हेत, तन भी होता है अभिप्रेत ।
योग से होता मन निर्माण, तन का तो नहीं हो निर्माण" ।
बोले नाथ "हे साध सुजान, अभी मिला नहीं पूर्ण ज्ञान ।
योगी तन को भी रच पाये, जिस में निर्मित चित्त समाये" ।
कहा साध "यह अद्भुत बात, एक ही जन के हों बहु गात" ।
कहा नाथ "यह सत्य लो जान, योगी करता देह निर्माण ।

दो०-उन देहों का लोप हो, चित्त लोप के साथ ।
जग जाने नहीं यह सब, गुप्त रहे सब गाथ" ।। 4325

कहा साध "हे नाथ प्यारे, सत्य वचन हैं सभी तिहारे ।
एक बात प्रभो करें स्पष्ट, जिस से भ्रांति होय मम नष्ट ।
जन्म से पाता जन इक चित्त, दूसर होता निर्मित चित्त ।
इन दोनों में भेद जो नाथ, वह बतला कर करें सनाथ" ।
कहा नाथ "यह प्रश्न महान, इसका उत्तर भी लो जान ।
असली चित्त जो होय साईं, उसमें तो संस्कार समाईं ।
वासना का जो रूप धरायें, नूतन कर्मों को उपजायें ।
निर्मित चित्त शून्य लो जान, वासना का वहां नहीं स्थान ।

दो०-देह संग वह लुप्त हो, करके अपना काम ।
क्षय योगी जन करत इमि, अपने कर्म तमाम ।। 4326

हे साध यह मोक्ष का ज्ञान, इस समान नहीं को विज्ञान ।
हृदयंगम इस को कर पाओ, और लौट फिर सायं आओ" ।

दिन तैंतीसवां (सायं)

सायं भयी साध चलि आया, सद्गुरु चरणि बैठ वह पाया ।
और पूछा उस "हे भगवान, है दुरूह यह कर्म का ज्ञान ।
योगी जन जो कर्म कर पाये, वह निज कर्म का फल न पाये ।
सर्व साधारण के जो कर्म, उनका समझूं आप से मर्म" ।
कहा नाथ "तुम को समझाऊं, रहसमयी सब बात बताऊं ।
सर्व साधारण के जो कर्म, मुझ से समझो उन का मर्म ।

दो०–जन साधारण के कर्म, 'शुक्ल' 'कृष्ण' हों मीत ।
शुक्ल से फल सुख मिलत, कृष्ण से दुख चीत ।। 43 27

हे साधो कर्मों को जान, संस्कार बनें इन से हि मान ।
संस्कार हि भव में ले आवें, भिन्न भिन्न रूप तब जीव धरावें ।
जीवन का परिमाण व सुख, जीवन के अनुभव और दुख ।
कर्म ही उन का है आधार, निश्चय से ले जन मन धार" ।
कहा साध तब "हे महाराज, यह ज्ञान भी चाहूं आज ।
कर्म कर जन भूल ही जाये, केवल फल ही उस का पाये ।
यह कैसी लीला भगवान, जीव को घेर रहा अज्ञान" ।
कहा नाथ "मैं तुझे बताऊँ, विस्मृति का रहस्य जतलाऊँ।

दो०–स्मृति और संस्कार सब, एक रूप लो मान ।
सदा जीव के संग वे, प्रति जन्म में जान ।। 43 28क
संस्कारों को देखकर, लगा सकें अनुमान ।
जन्म पाछल में क्या था, अमुक अमुक इन्सान ।। 43 28ख
कर्मों से संस्कार हों, फिर कर्म बेअन्त ।
ऐसा यह इक चक्र है, अनादि और अनन्त" ।। 43 28ग

सुनकर ऐसी स्पष्ट यह बात, बोला सद्गुरू से वह "तात ।
चक्र जो अनादि और अनन्त, करते छिन्न किस विध हैं सन्त" ।
सुन कर नाथ उस की जिज्ञास, कहने लगे ला मुख पै हास ।
"ज्ञान भी मोक्ष का है उपाय, इस में न कोई संशय लाय ।
यह जन्म मरण का चक्र जोय, इस का अन्त ज्ञान से होय" ।
कहा साध "हे नाथ बतायें, होत ज्ञान किसे कह पायें" ।
बोले स्वामी "प्रश्न तिहारा, दूर करे यह संशय सारा ।
परिभाषा ज्ञान की जो साध, वही रहे तव चित्त निर्बाध ।

दो०-जो बतलाऊँ अब तुझे, उसे मान लो सत्य ।
मन में उस को धार लो, बुद्धि में भी तथ्य ॥ 4329

प्रकृति पुरुष में भेद लो जान, है ज्ञान की यही पहचान ।
ऐसे भेद को जानन हेत, लांबा मार्ग है अभिप्रेत ।
प्रकृति के दो रूप लो जान, चित्त और सभी तत्व मान ।
पुरुष व चित्त का जो संयोग, ज्ञान का है प्रथम प्रयोग ।
तीन गुणों का जोय प्रकाश, चित्त में उसका रहे विकाश ।
चित्त शून्य उन से हो जाये, शुद्ध ज्ञान तब ही हो पाये ।
फिर भी चित्त में हो यह बात, जैसे पुरुष वही साक्षात ।
यह भाव भी जमी हो क्षीण, प्रकृति पुरुष में होय विलीन ।
पुरुष स्वयं तब ही विकसाय, न चित्त के द्वारा वह लखाय ।
ऐसी अवस्था को लो जान, 'विवेक ख्याति' है अभिधान ।
आत्मा निज धर्म प्रकटाय, 'धर्ममेघ' वह समाधि कहाय ।
योगी 'धर्ममेघ' हो जाये, सृष्टि पै वह धर्म बरसाये ।
आत्मा में चित्तादि हों लीन, 'कैवल्य' में सर्वस्व लीन ।

दो०–'कैवल्य' को हि जान लो, लक्ष्य हमारा मीत ।
हे साधो कर साधना, लक्ष्य धार यह चीत" ॥ 4330

इस विध मुलख राज समझाया, रहस कैवल्य का जतलाया ।
पुनः कहा उस को "हे तात, श्रवण करो मम ध्यान से बात ।
कैवल्य प्राप्ति के हे तात, दोनों मार्ग जान विख्यात ।
सिद्धिन से कुछ योगी पायें, ज्ञान द्वारा कुछ पा जायें ।
दोनों योग के मार्ग जानो, बिना योग न मिलत यह मानो ।
कैवल्य हेत बहु तप दरकार, श्रद्धा भक्ति वैराग्य विचार ।
दीर्घ काल की होय कमाई, मिले सफलता तब ही भाई ।
परम लक्ष्य यह योग का जान, इस सम न कुछ और तू मान ।
हठ का मिला है तुम को ज्ञान, राज योग भी लीना जान ।
इक दूजे के पूरक भाई, 'पूरण योग' कथन में आई ।
अब तुम पुनः लौट के जाओ, वन में जाकर योग कमाओ" ।
इतना बोल नाथ उठ पाय, साध पुनः पुनः माथ झुकाय ।
उसका मन था भया बेहाल, गुरु वियोग न सका संभाल ।

दो०–जिमि तिमि फिर संभल कर, चला गया वह साध ।
गुरु वचन शिरोधार्य इस, लीन योग आराध ॥ 4331

स्वामी जी के दिव्य विचार, "विचार काण्ड" उन्हीं का सार ।
स्वामी मुलख के ये उपदेश, भक्त पढ़ें जो इन्हें हमेश ।
मिलेगा राज योग का ज्ञान, गुरु कृपा भी पायें महान ।
पतंजल शास्त्र में जो आया, मुलख ने साधु को समझाया ।
परिभाषा योग की बतलाई, समाधिन की फिर बात चलाई ।
वृत्तियों का बहु दीना ज्ञान, दीन अभ्यास को अधिमान ।
वैराग्य को भी कीन स्पष्ट, जिस बिन क्लेश न होंय नष्ट ।

संप्रज्ञात वा असंप्रज्ञात, खोल बताई उन की बात ।

दो०-स्वामी जी ने खोल कर, दीना योग ज्ञान ।
जग हित उन ने कथ दिया, गूढ़ रहस्य महान ।। 4332

एकागता के हेत बताये, सरल उपाय कथन में लाये ।
ईश्वर का प्रणिधान बताया, लक्षण ईश्वर का कथ पाया ।
दीन सवितर्क योग का ज्ञान, व निर्वितर्क जो ध्यान महान ।
सबीज समाधि के पश्चात, निर्बीज समाधि की भी बात ।
सरल रूप से सब कथ पाये, जग हित ये उपदेश सुहाये ।
तत्पश्चात साधन कथ पाये, क्रिया योग के भेद बताये ।
पांच क्लेश भी उन बतलाय, क्लिष्टाक्लिष्ट जो कथनी आय ।
योग के आठ अंग का ज्ञान, स्वामी जी तब कीन बखान ।

दो०-आठ अंग जो योग के, राज योग के मूल ।
स्वामी जी ने कथ दिये, जगत जाये न भूल ।। 4333

धारणा ध्यान समाधि तीन, नाम 'संयम' का इन को दीन ।
'संयम' का उन गुण बतलाया, उससे 'ज्ञानालोक' जताया ।
उस का हो जब सदुपयोग, 'विभूतिन' का तब हो संयोग ।
योग से जो 'विभूतिन' आयें, सभी की गिनती न कर पायें ।
सह विस्तार नाथ कथ दीन, जगत योग की महिम ले चीन ।
नाथ कहा जो विभूति योग, हो 'कैवल्य' हेतु प्रयोग ।
'चित्तनिर्माण' जभी हो पाय, 'कैवल्य' इसी जन्म में आय ।
सारी बात उन कीन स्पष्ट, भ्रांति जगत की हो जिमि नष्ट ।

दो०-स्वामी जी ने जगत को, जो दीना है ज्ञान ।
रहस योग के खोल कर, यह उपकार महान ।। 4334

स्वामी जी के ये उपदेश, विचार काण्ड में वर्णित लेश ।
इस का नित्य करे जो पाठ, योगी पावे सिद्धिन आठ ।
सर्व साधारण जन पढ़ पावे, राज योग में रुचि ले आवे ।
राम लाल की दिव यह रचना, स्वामी जी के सुन्दर वचना ।
महा प्रभु ने स्वयं लिखवाय, लेखनी 'सेवक' हाथ थमाय ।
जग में इस का हो विस्तार, योग का सर्वत्र हो प्रचार ।
[1] प्रभु कृपा से भयी संपूर्ण, ज्येष्ठ की चार तिथि को पूर्ण ।
संवत विक्रमी बीस्सौ छप्पन, मंगल वासर शुभ है लक्षण ।
स्वीकार करें इसे भगवान, दासन दास 'सेवक' को मान ।

दो०–दासों के इस दास की, हो विनय स्वीकार ।
लिपिक बनाया दास को, भव से करिये पार ।। 4335क
समर्पित तेरे चरण में, दिव रामायण पूर्ण ।
मैं चाहूं विश्राम अब, ग्रंथ भया संपूर्ण'' ।। 4335ख

– इति –

इति 'श्री योग महादिव्य रामायण' के 'विचार काण्ड' की समाप्ति के साथ ही श्री सद्गुरु देव योगेश्वर स्वामी मुलख राज जी महाराज के शिष्य 'सेवक' चमन लाल कपूर कृत योगावतार श्री प्रभु राम लाल जी महाराज की दिव्य जीवनी 'श्री योग महा दिव्य रामायण' संपूर्ण भयी ।।

[1] होश्यारपुर चार ज्येष्ठ 2056 विक्रमी मंगलवार तदनुसार 18 मई सन् 1999

श्री सद्गुरू स्वामी मुलखराज जी महाराज ने ई० सन् 1950 में पं० चक्रधारी 'बेजर' द्वारा इस ग्रंथ के बालकाण्ड की रचना करवाई थी। तब वह कार्य बीच में ही रहा। ई० सन् 1970 में श्री प्रभु जी ने 'सेवक' द्वारा इस ग्रंथ के रचना का कार्य पुनः आरम्भ करवाया। वह अब ई० सन् 1999 में प्रभु कृपा से सम्पूर्ण हुआ है।

❖ योग साधन आश्रम के नियम ❖

(श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज द्वारा रचित)

1. आश्रम में किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती।
2. पुरूषों को पुरूष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन सिखलाती हैं।
3. आश्रम के विद्यार्थी तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं : –
   (क) जो सर्वदा आश्रम में रहकर अपने साधन को करते हुए आश्रम की यथा योग्य परिचर्य्या और अन्य भाईयों की प्रेम पूर्वक सेवा करेंगे।
   (ख) जो साधक यथा अवकाश आश्रम में रहकर स्वयं साधन सीखकर अपने देश में जाकर दूसरों को भी अपने अनुभव से लाभ पहुंचाते हुए प्रचार करेंगे।
   (ग) जो आश्रम में आकर साधनों से लाभ उठाएंगे।
4. प्रत्येक साधक को अपने सब खर्च का प्रबन्ध आप करना होगा।
5. रोगी साधक को अपने रोग निवारणार्थ कम से कम एक मास रहने का प्रबन्ध करके आना चाहिये, किन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति के लिये योग के अन्तरंग साधन करना चाहते हों उनका श्री गुरू जी के ही विचार पर सदा निर्भर रहना होगा।
6. प्रत्येक साधक को अपनी दिनचर्य्या तथा रात्रिचर्य्या (टाईम टेबल) श्री गुरू जी की आज्ञानुसार नियत करनी होगी।
7. योग चिकित्सा से चिकित्सक होने वाले साधक को अपने चिकित्सा काल के अन्दर किसी भी डाक्टर वैद्य या हकीम की दवाई खाना निषिद्ध है।
8. यदि कोई साधक अन्य साधकों के किसी साधन को देखकर बिना अनुमति स्वयं उन साधनों को करेगा तो उस से लाभ हानि का जिम्मेवार वह स्वयं होगा और आश्रम के आचार्य के अनुशासन का भी भागी होगा।
9. २० वर्ष से कम आयु वाले को उसके संरक्षकों की सम्मति से प्रविष्ट किया जायेगा।
10. स्त्रियों को संबन्धियों के साथ आना चाहिये या वृद्ध स्त्री को जो सरक्षक हो उसी के साथ आना चाहिये।
11. साधकों को जो भी कोई उपासना या साधन दिया जावे उसे नित्य नियम पूर्वक करना होगा और आचार्य जी की आज्ञा के बिना अन्य कोई मनमानी नूतन उपासना या धारणा नहीं करनी होगी।

●●●●